योग चिन्तन
जप
एवं
ध्यान

(सरल भाषा में आवश्यक जानकारी
और
अनुभवी व प्रभावित
जप एवं ध्यान विधि)

मदन लाल अनेजा

प्रकाशक :
मानव संस्कार फाऊन्डेशन
मो॰ 09873029000, 011-22423715

प्रकाशक :
मानव संस्कार फाऊन्डेशन
4 ए (तीसरी मंजिल) नया गोविन्द पुरा,
राम मन्दिर गली, दिल्ली-110051.
मो॰ 09873029000, 011-22423715

ISBN : 978-93-5104-240-2

प्रथम संस्करण : 2013

मूल्य : ₹ 80.00

मुद्रक :
वैदिक प्रेस,
कैलाशनगर, दिल्ली-31
दूरभाष : 011-22081646

Justice K. G. Balakrishnan
Chairperson
(Former Chief Justice of India)

National Human Rights Commission
Faridkot House, Copernicus Marg,
New Delhi-110 001 India
Phone : 91-011-23382514
Fax : 91-11-23384863, 23386521
E-mail : chairnhrc@nic.in

दो शब्द

महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योग दर्शन निसंदेह समाज के प्रत्येक वर्ग के लिए न केवल हितकारी है अपितु उपयोगी भी। योग दर्शन में बताये गये प्रथम दो अंग–यम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह) और नियम (शुद्धि, स्वाध्याय, सन्तोष, तप एवं ईश्वर प्रणिधान) का यदि सही ढंग से पालन जीवन में किया जाय तो न केवल मानव अधिकारों के संरक्षण में पर्याप्त सफलता मिलेगी अपितु समाज, राष्ट्र व विश्व में स्थायी शान्ति स्थापित हो सकती है ।

प्रस्तुत पुस्तक–योग चिन्तन–''जप एवं ध्यान'' में श्री मदन लाल अनेजा ने अष्टांग योग की सरल हिन्दी भाषा में व्याख्या करते हुए जप एवं ध्यान संबंधी सभी विषयों पर बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रकाश डाला है। प्रतिदिन ध्यान में बैठने की विधि बताते हुए लेखक ने प्राणायाम व संकल्प प्रक्रिया 2 और 5 के अंतर्गत साधक के हृदय में सभी प्राणियों के मानवाधिकार के संरक्षण और उनका उल्लंघन न करने का संकल्प दिलाकर मानव अधिकारों के प्रति एक नई मुहिम की शुरूआत की है।

लेखक ने ईश्वर–स्तुति–प्रार्थना–उपासना–ध्यान हेतु व्यक्तिगत आचरण, श्वसन क्रिया, प्राणायाम व संकल्प के पालन करने पर विशेष ध्यान दिया है । इनका अभ्यास करने से प्रत्येक साधक को ध्यान में सफलता मिलने के साथ–साथ समाज में भी उसका आचरण प्रशंसनीय होगा। फलस्वरूप, मानव अधिकारों के संरक्षण में वृद्धि होगी ।

आशा है जप व ध्यान की भ्रान्तियों के दूर करने के साथ–साथ मानव अधिकारों के संरक्षण में भी यह ग्रन्थ पाठकों के बीच काफी लोकप्रिय हो सकेगा ।

(न्यायमूर्ति के. जी. बालाकृष्णन)

प्रशंसनम्

श्री मदनलाल अनेजा द्वारा लिखित **"योग चिन्तन–जप एवं ध्यान"** नामक पुस्तक को पढ़ने और समझने का अवसर प्राप्त हुआ । आज का मानव भौतिकवाद और असन्तोष के कारण सदा परेशान रहता है । मन सदा–सर्वदा चंचल रहता है । एक–दूसरे को देखकर ईर्ष्या–द्वेष करता है । ध्यान का लक्षण है–"ध्यानं निर्विषयं मनः" अर्थात् सभी विषयों से मन को हटाने के बाद ही ध्यान में मन लगता है । ध्यान किसका किया जाय । जिसका ध्यान करने से मन शान्त और परमसन्तोष का अनुभव करे । इस आपाधापी की दुनियां में ध्यान ही एक मात्र सहारा है । परमपिता परमात्मा का ध्यान करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है । ध्यान करने से सभी प्रकार की बुराईयां समाप्त होती हैं । जीवन निर्मल और पवित्र बन जाता है ।

ध्यान के समय "ओ३म्" का जाप करना चाहिए । प्राणायाम मन्त्र का पाठ करना चाहिए । बहुत पुरानी कहावत है–"मन चंगा तो कठौती में गंगा" । जैसे हम आसन, प्राणायाम और व्यायाम से शरीर को चंगा करते हैं । ठीक वैसे ही ध्यान से हम अपने मन को चंगा करते हैं । संस्कृत की उक्ति है–"मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षमोः" मन ही मनुष्यों के बन्धन और मोक्ष का कारण है । चित्त को बाह्य विषयों से हटाकर परमसत्ता के साथ जोड़ कर चिन्तन–मनन करना ही ध्यान कहाता है ।

मैं इस बहुमूल्य ग्रन्थ के लेखन के लिए मान्य विद्वान् श्री मदन लाल अनेजा जी को साधुवाद देता हूँ ।

डा० मनुदेव बन्धु
16–8–2012 प्रोफेसर, वेद विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखण्ड

विषय सूचि

भूमिका

आज के सामाजिक व धार्मिक वातावरण पर यदि हम एक दृष्टि डालें तो विदित होता है कि शहरों व गांवों में काफी संख्या में लोग अव भी जप, सन्ध्या ध्यान में रुचि लेते हैं, समय लगाते हैं । लेकिन इसमें या तो उनको पूर्ण सफलता मिलती नहीं या फिर केवल नाम मात्र के लिए ही उनका संबंध ईश्वर से जुड़ पाता है । उपासना काल में 5-7 मिनट भी मन केन्द्रित नहीं हो पाता । विभिन्न प्रकार के विचार - एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा-मन में उठते रहते हैं । मन को संयम में रखने के लिए, इसकी वृत्तियों को रोकने के लिए अलग-अलग गुरुजन अपने अपने तरीके से भिन्न-भिन्न उपाय बताते रहते हैं ।

योग के व्यवसायीकरण के कारण समाज में विभिन्न भ्रान्तियां व अज्ञान फैला हुआ है । लेकिन सत्य यही है कि कोई भी विधि या उपाय जो वेद सम्मत् नहीं है, हमें ध्यान साधना में पूर्ण सफलता नहीं दे सकता। यही कारण है कि आजकल अधिकतर साधक, जो वैदिक विधि से ध्यान नहीं करते, अन्त में निराश होकर या तो ध्यान-सन्ध्या का अभ्यास छोड़ देते हैं या फिर 10-15 मिनट किसी भी आसन में बैठकर खानापूर्ति कर लेते हैं ।

ध्यान क्या है । ध्यान का उद्देश्य क्या है। किसका ध्यान करना चाहिए। ध्यान कैसे करना चाहिए । वेदानुकूल पद्धति क्या है । ध्यान करने की आयु क्या है । शरीर के भीतर धारणा करें या बाहर । यदि शरीर के भीतर करें तो किस अंग को केन्द्र मानें । ध्यान में मन कैसे लगायें। मन ध्यान में क्यों नहीं लगता । मन को एकाग्र करने का उपाय क्या है। ध्यान के क्या लाभ हैं । इससे हमारे शरीर व स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है । यह सभी विषय वेदों और भिन्न-भिन्न आर्ष ग्रन्थों में मिल जाते हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक में उपरोक्त सभी जानकारी सरल हिन्दी भाषा में, संक्षिप्त में एक ही स्थान पर वर्णन करने का प्रयास किया गया है जिससे साधकों को आसानी से ठीक व शुद्ध ज्ञान प्राप्त होने के साथ-2, ध्यान साधना में पूर्ण सफलता मिल सके ।

इसके अतिरिक्त ओ३म् व गायत्री मन्त्र की जप विधि एवं ध्यान विधि / प्रक्रिया लेखक अपने व्यक्तिगत अभ्यास और अनुभूति के आधार पर साधकों के लिए प्रस्तुत कर रहा है ताकि सभी भक्त इसका लाभ उठा सकें ।

इस पुस्तक को लिखने में मुझे जिन विद्वानों व आचार्यों की पुस्तकों से विचारों का आधार मिला, मैं उन सभी का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ ।

-मदन लाल अनेजा
4 ए नया गोविन्द पुरा, दिल्ली-51
मो० 09873029000

भाग – 1

योग चिन्तन

प्रभु भक्तों, ईश्वर की कृपा से अपने पुण्य कर्मों के फलस्वरूप हमें यह मानव शरीर मिला है । इसलिए हमारा यह कर्तव्य बनता है कि हम इस जीवन के मूल्य को जानें, इसका लक्ष्य पहचानें और भोगवाद एवं योगवाद में समन्वय करते हुए ध्यान व ईश्वर भक्ति को अपने जीवन का एक आवश्यक अंग बनायें ।

ध्यान एक आध्यात्मिक व मानसिक अभ्यास है । एक औषधि है। परमपिता परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभाव का निरन्तर चिन्तन मनन करना ही ध्यान कहलाता है । ध्यान में आत्मा को परमात्मा के पास बिठाना होता है । जैसे-2 आत्मा परमात्मा के निकट होती जाती है, उस को परमात्मा के गुण कर्म और स्वभाव की अनुभूति होती चली जाती है । आत्मा उन गुणों और स्वभाव को अपने आचरण में लाना शुरू कर देता है । वैसे वैसे आत्मा पर परमेश्वर के आनन्द की कृपा होती जाती है और वह ईश्वर के साक्षात्कार का अधिकारी बनती जाती है ।

ध्यान ही एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें जीव ईश्वर से नित्य प्रतिदिन वार्तालाप करता है । अपने सूक्ष्म शरीर रूपी पुस्तक का प्रातः सांय निरीक्षण करता है ताकि इस पर कोई कुसंस्कार या अशुभ कर्म अंकित न हो पाये व दिनचर्या ठीक रहे ।

ईश्वर निराकार है । यह अनुभूति का विषय है । वह हमारे हृदय में रहता है । इसकी अनुभूति शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म, और शुद्ध उपासना व ध्यान से ही हो सकती है ।

ध्यान के अभ्यास से हमारा शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य भी ठीक रहता है । यह मन की उलझन, भटकाव और असमंजस को दूर करने के साथ-2 हमें शान्ति व आनन्द की अनुभूति करवाता है । हमारे जीवन को निर्मल व सरल बनाता है । हमारे नकारात्मक विचारों व विकारों को दूर करने में हमारी सहायता करता है । हमारे अन्दर सुविचार

पैदा करता है । एकाग्रता से कार्य करने की शक्ति पैदा करता है । सत्य बोध का विकास करता है । हमारी गुप्त शक्तियों को जगाता है । हमारी स्मृति और बुद्धि को बढ़ाता है ।

इसके अतिरिक्त ध्यान के अभ्यास से ही हमारी मन और इन्द्रियां संयम में रहती हैं । मनुष्य आत्म दर्शन और ईश्वर साक्षात्कार का अधिकारी बन जाता है जो कि मनुष्य जन्म का मुख्य लक्ष्य है ।

वेद, उपनिषद और आर्ष ग्रन्थों के अनुसार हमें सर्वान्तर्यामी ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिए । धारणा व ईश्वर ध्यान शरीर के भीतर ही मन को हृदय प्रदेश, आज्ञा चक्र या ब्रह्मरन्ध्र पर केन्द्रित करके करना चाहिए । धारणा का केन्द्र बिन्दु बार-2 बदलना नहीं चाहिए । ईश्वर का ध्यान व उपासना करने से हमें सच्चा ज्ञान, बल, शान्ति, उत्साह, प्रेम, धैर्य, सहनशीलता, ओज, तेज और आनन्द आदि गुणों की प्राप्ति होती है । हमारे बुरे संस्कार धीरे-2 नष्ट होना प्रारम्भ कर देते हैं । इसके विपरीत ध्यान न करने से हमारे कुसंस्कार नहीं मिटते । हम शारीरिक व मानसिक रोगों से या तो ग्रस्त रहते हैं या होने पर अत्यन्त दुःख का अनुभव करते हैं । सही रूप से धर्म का पालन नहीं कर पाते । जीवन के मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता नहीं मिलती ।

ध्यान में ईश्वर सम्बन्धी विचार मन में बने रहते हैं । ईश्वर साकार नहीं है अतः ईश्वर को साकार रूप मानकर ध्यान करना अज्ञानता है । यह धारणा बिल्कुल गलत है कि साकार का ध्यान करना सरल है व निराकार का कठिन । ईश्वर के प्रति निष्ठा, श्रद्धा, रुचि, विश्वास नहीं है तो ध्यान में मन नहीं लगता है और न ही ध्यान से लाभ होता है ।

ध्यान का अभ्यास बचपन से ही शुरू कर देना चाहिए । इससे युवा अवस्था में अधिक लाभ होता है । इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है । आयु बढ़ती है । जीवन में सुख शान्ति आती है । वृद्धावस्था में ध्यान का अभ्यास शुरू करने वाला व्यक्ति रोग व कमजोरी होने के कारण आसन सिद्ध नहीं कर पाता । फलस्वरूप पूर्ण सफलता नहीं मिलती ।

आप सौभाग्यशाली हैं कि आपकी रुचि ध्यान में है । आशा है कि अब आपको और भटकना नहीं पड़ेगा । आइये, योगाभ्यास सीखने का

प्रयत्न करें । ईश्वर कृपा आप पर अवश्य होगी ।

अब हम उन विषयों का संक्षिप्त में चिन्तन मनन करेंगे जिनका शुद्ध ज्ञान होने से हमें ध्यान में सफलता मिलती है । इसके अतिरिक्त व्यवहार काल में हमारा आचरण उत्तम होता जाता है । यह विषय हैं ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति, सृष्टि, शरीर, कर्म, सुख-दुःख, जन्म, मृत्यु व जीवन का लक्ष्य संबंधी ज्ञान । इसके विपरीत, यदि इन विषयों का शुद्ध ज्ञान हमें (वेदानुसार) नहीं है या हम उस पर विश्वास नहीं करते तो हमें ईश्वर भक्ति, ध्यान और ईश्वर साक्षात्कार में सफलता नहीं मिल सकती और हम अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते।

जीवन का लक्ष्य

धन, सम्पत्ति, शक्ति, विद्या आदि सबका अन्त में नाश होता है । इनसे मनुष्य को वास्तव में सन्तोष नहीं होता, तृप्ति नहीं होती । ये केवल हमारे जीने के साधन है उद्देश्य नहीं । इनसे आत्मा की तृप्ति नहीं होती। फलस्वरूप वह अपने लक्ष्य ईश्वरीय आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाती । अतः समस्त दुःखों से छूटना, पूर्ण आनन्द को प्राप्त करना और ईश्वर की अनुभूति महसूस करना और दूसरों को भी करवाना, मनुष्य का परम लक्ष्य है । इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर हमें भोगवाद एवं योगवाद के बीच समन्वय बनाने की आवश्यकता है । यदि हम हमेशा भोगवाद अर्थात् धन कमाना, खर्च करना व भौतिक वस्तुओं के संग्रह करने पर ही अपना सारा समय और शक्ति लगायेंगे तो ईश्वर की अनुभूति या साक्षात्कार इस जन्म में संभव नहीं है। इसलिए हम अपने जीवन में व्यर्थ की बातों, अत्यधिक भोगों, व अनुचित इच्छाओं पर समय न लगायें । हमें धर्मानुसार पैसा कमाने के साथ-साथ समाज सेवा और ईश्वर-स्तुति-प्रार्थना उपासना के लिए भी उचित समय निकालना चाहिए ताकि हम ईश्वर भक्ति के अधिकारी वन सकें ।

ध्यान में सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि हम अपने व्यवहार काल में योगवाद व सत्य आचरण को कितना महत्व देते हैं । जैसे-जैसे योगवाद और सत्याचरण को अधिक महत्व व समय दिया जायेगा, फलस्वरूप उतनी ही गति से हमें ध्यान में सफलता मिलती चली जायेगी।

विभिन्न विषयों का शुद्ध ज्ञान

(ख) ईश्वर सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान विज्ञानः-

ईश्वर एक सत्तात्मक पदार्थ है । यह एक वस्तु है । वैदिक दर्शनों में वस्तु उसको कहते हैं जिसमें कुछ गुण, कर्म, स्वभाव होते हैं । ईश्वर सब जगह विद्यमान है । यह चेतन है, निराकार है, अखण्ड है । इसका कोई रंग, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, भार, आकार नहीं है ।

ईश्वर का मुख्य व निज नाम ओ३म् है । ईश्वर के मुख्य पांच कार्य हैं (1) सृष्टि की उत्पत्ति करना अर्थात् सृष्टि को बनाना । (2) पालन करना । (3) संहार करना (4) जीवों को उनके कर्मानुसार फल देना (5) वेदों का ज्ञान देना।

महर्षि दयानन्द ईश्वर को अनादि व सर्वशक्तिमान मानते हैं । उनके अनुसार ईश्वर सब कुछ कर सकता है लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि वह जो चाहे करे । वरन् इसका अर्थ है कि वह सृष्टि उत्पत्ति, पालन और प्रलय तथा सब जीवों के पाप-पुण्यों की यथायोग्य व्यवस्था करने में कभी भी किसी की सहायता नहीं लेता । वह असम्भव बातों को नहीं करता । वह न्याय हेतु अपनी शक्ति का प्रयोग करता है । वह स्वभाविक नियमों के विपरीत नहीं चलता है ।

उपनिषदों में ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि तथा नित्य तत्व माना है । इनका जन्म कभी नहीं होता । यह सृष्टि / जगत् के कारण हैं। इनका कोई कारण नहीं है । किसी को किसी ने नहीं बनाया है । जीव प्रकृति का भोग करता है और फंस जाता है । परमात्मा न भोग करता है और न फंसता है । महर्षि दयानन्द ने वेदों व अन्य वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करने के बाद ईश्वर के 100 गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन "सत्यार्थ प्रकाश" में किया है । इनमें से उन्होंने ईश्वर के 20 नाम (गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार) आर्यसमाज के दूसरे नियम में सम्मलित किये हैं जो अर्थसहित इस प्रकार हैं:-

(1) **सच्चिदानन्दस्वरूप :** ईश्वर सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है।

(2) **निराकार :** ईश्वर की कोई आकृति, मूर्ति या रंग रूप नहीं है ।
(3) **सर्वशक्तिमान् :** सृष्टि के रचने, पालने व प्रलय करने में ईश्वर किसी की सहायता नहीं लेता है ।
(4) **न्यायकारी :** ईश्वर जीव को उसके कर्मोनुसार फल देता है ।
(5) **दयालु :** ईश्वर मनुष्य को सभी प्रकार के सुख साधन प्रदान करता है जैसे–सूर्य का प्रकाश, जल, वायु, अग्नि आदि ।
(6) **अजन्मा :** ईश्वर जीव की तरह शरीर से संयोगरूपी जन्म नहीं लेता है ।
(7) **अनन्त :** ईश्वर की विशालता की कोई सीमा नहीं है ।
(8) **निर्विकार :** ईश्वर सभी प्रकार के विकारों से रहित है । ईश्वर में जड़ पदार्थों के विकार जैसे सड़ना, गलना आदि नहीं पाये जाते। ईश्वर चेतन जीव के दोषों - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार द्वेष आदि से भी परे है ।
(9) **अनादि :** ईश्वर की उत्पत्ति नहीं हुई ।
(10) **अनुपम :** ईश्वर से अच्छा कोई भी अन्य पदार्थ या वस्तु सृष्टि में नहीं है ।
(11) **सर्वाधार :** ईश्वर ही सबका आधार है । पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश-गंगा - सभी का निर्माणकर्ता व आधार ईश्वर है ।
(12) **सर्वेश्वर :** ईश्वर ऐश्वर्य से युक्त है । सृष्टि में जो भी धन, सम्पत्ति, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, ग्रह, उपग्रह आदि हैं । इन सबका मालिक ईश्वर ही है ।
(13) **सर्वव्यापक :** ईश्वर सभी स्थान और तीनों लोकों में विद्यमान है।
(14) **सर्वान्तर्यामी :** ईश्वर सभी जड़ व चेतन पदार्थों के अन्दर-बाहर विद्यमान है ।
(15) **अमर :** ईश्वर प्राणी के शरीर की तरह समाप्त नहीं होता । अर्थात् मृत्यु से परे है ।
(16) **अजर :** ईश्वर हमारे शरीर की तरह कभी भी रोग ग्रस्त व बूढ़ा नहीं होता ।
(17) **अभय :** ईश्वर सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक होने के कारण

भय से रहित है ।
(18) **नित्य :** ईश्वर भूतकाल, वर्तमान काल व भविष्यकाल सभी कालों में सदा रहता है ।
(19) **पवित्र :** ईश्वर पाप-कर्म व अविद्या से परे है ।
(20) **सृष्टिकर्ता :** ईश्वर सृष्टि का जन्मदाता, पालनकर्ता व प्रलयकर्ता हैं ।

ईश्वर प्राप्ति या साक्षात्कार के उपाय हैं सत्संग, आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय व उनमें लिखी बातों को आचरण में उतारना, ईश्वर भक्ति, ध्यान व प्रभु की कृपा । प्रभु कृपा पाने के लिए मनुष्य को दुश्चरित को तयागना चाहिए, चित्त को एकाग्र करना चाहिए, तृष्णाओं और इच्छाओं को संयम में रखना चाहिए, आत्मिक ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए ।

(ख) प्रकृति व सृष्टि सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान-विज्ञानः—

(1) **प्रकृति :** प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं – सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण से बनी है । यह परमाणु जड़ पदार्थ हैं । इनमें ज्ञान व चेतन शक्ति नहीं है । यह परमाणु अनादि व अनन्त हैं । यह न उत्पन्न होते हैं न नष्ट होते हैं । जगत की रचना करने के लिए कारण के रूप में प्रकृति की आवश्यकता होती है । जैसे घड़ा बनाने के लिए मिट्टी की आवश्यकता ।

यह सारी प्रकृति वास्तविक है । माया या स्वप्न नहीं है । इस प्रकृति को कभी किसी ने नहीं बनाया है । इसके पदार्थों से भोग प्राप्त करने का हर जीवात्मा को अधिकार है । यह भोग सब जीवों को यथायोग्य व्यवहार पूर्वक प्राप्त होता रहता है ।

ईश्वर अपनी शक्ति द्वारा प्रकृति से संसार रचता है । प्रकृति भोग्य है । यह आत्मा के लिए विभिन्न रूप धारण करती है । ईश्वर ने प्रकृति को कुछ नियमों के अन्दर रखा हुआ है । प्रकृति उनका उल्लंघन कभी नहीं करती । सृष्टि में हमें जो कुछ दीखता है यह प्रकृति और आत्मा के संयोग का ही फल है ।

(2) **सृष्टि (संसार):**—ईश्वर ही सृष्टि की रचना करता है । वह

सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर अपनी शक्ति व ज्ञान द्वारा जीव के लिए संसार बनाता है ।

प्रत्येक सृष्टि का आरम्भ भी है और अन्त भी । अन्त होने के बाद सृष्टि फिर बनती है यह क्रम बराबर चलता रहता है । प्रत्येक सृष्टि में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी आदि के समान पिण्ड बनते हैं ।

सृष्टि में तीन तत्व काम कर रहे हैं । पहला परमात्मा, दूसरा जीवात्मा तथा तीसरा प्रकृति । ईश्वर ने सृष्टि की रचना इस उद्देश्य से की है ताकि जीवात्मा दुःख और वासनाओं से मुक्त होकर आनन्दमयी परमात्मा का साक्षात्कार कर सके । यह रचना जीवात्मा के हित के लिए की गई है । उसको दुःखी करने के लिए नहीं । पूर्व कर्मानुसार जीव को शरीर, आयु व भोग मिलते हैं । ये सुख और दुःख दोनों प्रदान करते हैं। संसार या सृष्टि के अभाव में यह सुख-दुःख भोगना असंभव है ।

एक सृष्टि की आयु 4 अरब 32 करोड़ वर्ष होती है । यह आयु सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलयुग से मापी जाती है विक्रम संवत् 2064 (ई0 स0 2000) में वर्तमान कलयुग के 5107 वर्ष बीत चुके हैं।

(ग) जीवात्मा सम्बन्धित शुद्ध ज्ञानः–

जीवात्मा :–जीवात्मा को आत्मा व जीव नाम से भी पुकारा जाता है । यह सत व चेतन है । शरीर व ईश्वर से भिन्न है । यह अनादि और अनन्त है । इसे ईश्वर ने नहीं बनाया । जब से ईश्वर है तभी से यह है इसके कार्य न तो ईश्वर की मर्जी से होते हैं न ईश्वर की योजना और सर्वज्ञता के अनुसार होते हैं । अपने कर्मों के अनुसार यह मनुष्य, पशु, पक्षी, कीटाणु, आदि का शरीर धारण करती है । यह मानव शरीर में संसार के भोग भोगने और दुःखों की निवृत्ति करके मोक्ष प्राप्त करने का प्रयत्न करता है । यह ईश्वर का अंश नहीं है । यदि ऐसा होता तो यह अज्ञानी न होता ।

आत्मा सूक्ष्म, नित्य, अजर, अमर, सत्य, एकदेशी, अल्पज्ञ, व कर्म करने में स्वतन्त्र है । किन्तु फल भोगने में ईश्वराधीन है । इसमें रंग, रूप, भार, गंध नहीं है । इसका कोई लिंग नहीं होता । यह स्थान नहीं घेरती।

एक सूई की नौंक पर विश्व की सभी जीवात्माएं आ सकती हैं। जीवात्मा शरीर में मुख्य रूप से हृदय प्रदेश में रहता है । किन्तु गौण रूप से यह नेत्र, कण्ठ आदि स्थानों में भी निवास करता है ।

हमारी दृष्टि में आत्मायें अनन्त हैं परन्तु ईश्वर के ज्ञान स्वरूप में आत्मायें सीमित हैं । सभी आत्माओं का स्वरूप एक सा है । हमें दिखने वाला भेद शरीर, बुद्धि, ज्ञान, बल, कर्म आदि के कारण प्रतीत होता है।

इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, ज्ञान, दुःख-सुख की अनुभूति करना जीवात्मा के लक्षण हैं । आत्मा के कर्म करने के दो साधन हैं ।

(1) **आन्तरिक साधन–**मन, बुद्धि और अहंकार ।

(2) **बाहरी साधन–**हाथ, पैर, नाक, कान एवं मुंह ।

शब्द, रस, रूप, गन्ध और स्पर्श – इन पांचों विषयों को जानने के लिए पांच ज्ञानेन्द्रियां आत्मा की सहायता करती हैं - कान-शब्द सुनने के लिए, जीभ-रस चखने के लिए, नेत्र-रूप देखने के लिए, नासिका-गन्ध सुंघने के लिए और त्वचा छूने के लिए । इन ज्ञानेन्द्रियों के द्वार बाहर की ओर खुलते हैं । इसी प्रकार पांच कर्मेन्द्रियां-वाणी, हाथ, पांव, गुदा और उपस्थ (मुतेन्द्रिय) जीवन को चलाने में जीवात्मा की मदद करती हैं । यह सब ज्ञानेन्द्रियां व कर्मेन्द्रियां बाहरी विषयों को ही ग्रहण करती हैं । इसके अतिरिक्त मन इन्द्रिय द्वारा शरीर के अन्दर संकल्प, वासना, सुख-दुःख का संसार रचा जाता है । जब यह इन्द्रियां संयम में नहीं रहती तो जीवात्मा को अपने लक्ष्य तक पहुँचने में सफलता नहीं मिलती ।

जीवात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव को जानने से हमें शरीर, इन्द्रियां और मन पर अधिकार प्राप्त हो जाता है । हम बुरे कार्यों को करने से बचते हैं।

(घ) शरीर सम्बन्धित शुद्ध ज्ञान-विज्ञान

मानव शरीर पंच महाभूत से निर्माण होता है - जल, वायु, आकाश, अग्नि व पृथ्वी । यह तीन प्रकार का है

(1) स्थूल शरीरः–

मानव शरीर हाड़ मांस व हड्डियों का बना दिखाई देता है । यह

मृत्यु होने के बाद छूट जाता है । इसके द्वारा जीवात्मा कर्म फल का भोग करता हुआ मोक्ष को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है । शरीर उत्पन्न होता है, बढ़ता है, सर्दी और गर्मी महसूस करता है, बृद्ध होता है और अन्त में समाप्त हो जाता है ।

हमारे जीवन का मुख्य लक्ष्य है धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करना । धर्म – बुद्धि के लिए, अर्थ3– शरीर के लिए, काम – मन के लिए, और मोक्ष आत्मा के लिए । यह कार्य शरीर के द्वारा ही हो सकता है । इसीलिए हमें अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहिए । इसकी रक्षा करनी चाहिए । इसको शक्तिशाली बनाना चाहिए । इसको स्वस्थ रखने के चार उपाय है ।

(क) **सात्विक आहार**–ऐसा भोजन जिससे शरीर के अन्दर सात्विक शक्ति पैदा हो । सात्विक भोजन से हमारा मन, विचार व आचरण अच्छा बनता है । हम निरोग रहते हैं ।

(ख) **निद्रा**–सोने की वह स्थिति जिसमें कोई चिन्ता न हो । अच्छी, गहरी व सुखद नींद से हम शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहते हैं ।

(ग) **ब्रह्मचर्य**–खाये हुए भोजन से बने तत्व को संभाल कर रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है । भोजन से रस बनता है रस से रक्त, रक्त से चर्वी, चर्वी से हड्डियां, हड्डी से मज्जा, मज्जा से वीर्य और वीर्य से ओज बनता है । इस ओज से मानव का मुखमण्डल चमकता है । बुद्धि तीव्र व प्रज्ञा हो जाती है । यह ओज ही आत्मा का भोजन है । अतः लम्बी आयु व उपासना में सफलता के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। गृहस्थ में भी ब्रह्मचर्य पालन के कुछ नियम है उनका अनुकरण करना चाहिए।

(घ) **नियमित व्यायाम**–भोजन को पचाने और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए नियमित व्यायाम, आसन व श्वसन क्रियायें अति लाभदायक हैं । इनसे शरीर हल्का होता है, कार्यक्षमता बढ़ती है, सभी अंग स्वस्थ रहते हैं । बुढ़ापा जल्दी नहीं आता है, आलस्य दूर रहता है, शरीर के विभिन्न दोष दूर होते हैं, मन निर्मल व प्रसन्न रहता है ।

आसन व व्यायाम करते समय मन में भावना करें कि मेरा अमुक अंग (जिसके लिए व्यायाम या आसन कर रहे हैं) प्रभु की कृपा से स्वस्थ है या हो रहा है । भावना युक्त क्रिया करने से लाभ अधिक व शीघ्र होता है ।

कुछ सूक्ष्म / प्रारम्भिक व्यायाम हैं–

(1) आंखों का व्यायाम (2) गर्दन का व्यायाम (3) मुख, जिह्वा व गले का व्यायाम (4) हाथ की अंगुलियों के व्यायाम (5) कलाई का व्यायाम (6) कन्धों का व्यायाम (7) कमर का व्यायाम (8) घुटनों का व्यायाम (9) पैर का व्यायाम।

कुछ लाभदायक श्वसन क्रियायें भी अवश्य करनी चाहिए । इनसे प्राण वायु शरीर की प्रत्येक कोशिका तक आसानी से पहुँच जाती है और अशुद्ध वायु बाहर निकल जाती है । दो महत्वपूर्ण श्वसन क्रियायें हैं

(1) दीर्घ श्वसन (slow, long and deep breathing) (2) मध्य श्वसन (slow, long and not very deep breathing) ।

इसके अतिरिक्त अनुलोम विलोम व नाड़ी शोधन प्राणायाम भी श्वसन क्रियायों में सम्मिलित हैं । ये क्रियायें किसी भी योग शिक्षक से सीखी जा सकती हैं ।

अपने स्वास्थ्य व आयु के अनुसार हमें कुछ आसनों का निर्धारण करके उन्हें प्रतिदिन नियम से करने चाहिए । आसनों का निर्धारण करते समय प्रयत्न करें कि एक सप्ताह में शरीर के सभी अंगों का व्यायाम हो जाये ।

इस शरीर को अन्नमय कोश भी कहते हैं क्योंकि यह अन्न के आश्रय पर जीवित रहता है । कोश का अर्थ है भण्डार । अन्नमय कोश के अन्दर प्राणमय कोश है । उसके भीतर मनोमय कोश है । फिर विज्ञानमय कोश है और अन्त में आनन्दमय कोश है ।

(1) **अन्नमय कोश :** यह स्थूल शरीर है । यह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश – पांच भूतों से आत्मा के कर्मो के अनुसार बनता है। यह उत्पन्न होता है, बढ़ता है, घटता है, रोगी होता है, अन्त में मृत्यु को प्राप्त होता है । आत्मा संसारिक सुख दुःख इसी के द्वारा भोगता है।

अन्नमय कोश सभी कोशों का आधार है ।

(2) **प्राणमय कोश :** इसके अन्तर्गत पांच **प्राण और पांच कर्मेन्द्रियां आती हैं । यह क्रिया शक्ति का कोश है ।**

(क) **पांच प्राण**–1. प्राण वायु, 2. अपान वायु, 3. समान वायु, 4. उदान वायु और 5. व्यान वायु

(ख) **पांच कर्मेन्द्रियां**–1. हाथ, 2. पैर, 3. जिह्वा, 4. उपस्थ, 5. गुदा ।

(3) **मनोमय कोश :** इसके अन्तर्गत मन और पांच ज्ञानेन्द्रियां आती हैं जिनके नाम है घ्राण (गन्ध अनुभव करना) रसना (स्वाद लेना) चक्षु (देखना) श्रोत्र (सुनना) और त्वक (स्पर्श करना)। **यह कोश इच्छा शक्ति का केन्द्र है ।**

(4) **विज्ञानमय कोश :** यह बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से बनता है । **यह ज्ञान-शक्ति का भण्डार है ।** इसमें आत्मा, परमात्मा और प्रकृति का सच्चा ज्ञान रहता है ।

(5) **आनन्दमय कोश : यह परमात्मा का निवास स्थान है ।** जब क्रिया शक्ति, इच्छा शक्ति और ज्ञान शक्ति शान्त हो जाती हैं तब आनन्दमय कोश की अनुभूति होती है । यहाँ पर ईश्वर का साक्षात्कार होता है ।

(2) सूक्ष्म शरीर :

यह स्थूल शरीर के अन्दर विद्यमान है । सूक्ष्म शरीर में 18 तत्व हैं–पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच तन्मात्राएं, मन, बुद्धि व अहंकार। स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी सूक्ष्म शरीर नष्ट नहीं होता । जब तक जीवात्मा की मुक्ति न हो जाये, यह जीवात्मा के साथ जन्म–जन्मान्तर चलता रहता है ।

सूक्ष्म शरीर में हमारा प्रत्येक कर्म – अच्छा या बुरा – लिखा जाता है इस जन्म में और पूर्व जन्मों में आत्मा जो भी कर्म करता है वह सब सूक्ष्म शरीर में लिखा रहता है । इसी शरीर के सहारे आत्मा अपने कर्मों के अनुसार भिन्न–2 योनियों को प्राप्त करता रहता है ।

यह अत्यन्त सूक्ष्म है । यह छोटे बड़े सभी प्राणियों के स्थूल शरीर में रहता है । मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर अन्दर की सारी सुक्ष्म शक्तियों और इन्द्रियों के भोगों के रिकार्ड को एकत्र करके अपने साथ ले जाता है । यह रिकार्ड कीपर है जो कभी भी रिकार्ड रखने में गलती नहीं करता और आत्मा इसी के अनुसार अन्य योनी में भेज दिया जाता है ।

हमें सूक्ष्म शरीर को पवित्र व वासना रहित बनाना चाहिए । इसको निरन्तर पढ़ना चाहिए । पढ़कर त्रुटियों को सुधारना चाहिए। जो लोग प्रतिदिन इस सूक्ष्म शरीर रूपी पुस्तक का स्वाध्याय करते हैं और त्रुटियों का सुधार करते जाते हैं उनको मृत्यु के समय कोई पश्चाताप नहीं होता क्योंकि मृत्यु के समय जब पृष्ठ के बाद पृष्ठ जीवात्मा के सामने खुलते हैं उस समय अन्तिम पृष्ठ पर ट्रांसफर की आज्ञा लिखी होती है । उस पर लिखा होता है कि हे जीवात्मा ! अब मनुष्य शरीर से तेरा परिवर्तन अमुक अच्छी योनि में होगा जैसे मनुष्य या देवता की योनि ।

इसके विपरीत जो मनुष्य अच्छे कर्म नहीं करते, वे मृत्यु के समय अपने पृष्ठों को देखकर पश्चाताप करते हैं और अपना नीच पशु योनि में ट्रान्सफर का आर्डर पढ़कर रोते हैं । लेकिन अब आंसू बहाने से स्थिति नहीं बदलती ।

(3) कारण शरीर :

सत्व, रज और तम – इन तीनों तत्वों को कारण शरीर कहते हैं । सभी जीवों का कारण शरीर एक सा ही होता है । इसके विपरीत सभी जीवों का स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर अलग–अलग होता है।

(ङ) शरीर इन्द्रियां :

शरीर में कुल ग्यारह इन्द्रियां हैं । पांच ज्ञानेन्द्रियां–1. घ्राण (गन्ध की अनुभूति के लिए, 2. रसना–स्वाद के लिए, 3. चक्षु–देखने के लिए, 4. श्रोत्र–सुनने के लिए, 5. त्वक्–स्पर्श करने के लिए ।

पांच कर्मेन्द्रियां–1. हस्त–लेने के लिए व कार्य करने के लिए

2. पाद–चलने के लिए, 3. जिह्वा–बोलने के लिए व भोजन करने के लिए, 4. उपस्थ–मूत्र त्याग व उत्पत्ति के लिए, 5. गुदा–मल त्याग करने के लिए । ग्यारहवीं इन्द्रिय–मन

यह सभी इन्द्रियां जड़ हैं । साधक को चाहिए कि इनका दास न बने । इनका स्वामी बने । इसी में कल्याण है । ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां मन से जुड़कर कार्य करती है । मन आत्मा से जुड़कर कार्य करता है । मन इन्द्रियों का कमान्डर है । इन्द्रियों के माध्यम से शरीर जो कुछ प्राप्त करता है वह सब मन का भी भोजन बन जाता है ।

मन

मन एक जड़ वस्तु है । इसका मुख्य कार्य संकल्प और विकल्प करना है । मन का संबंध इच्छाओं, कामनाओं और वासनाओं से है। विषय वासनाओं को संयम में रखकर हम मन को मोक्ष की ओर ले जा सकते हैं । मन की पांच अवस्थायें हैं (1) क्षिप्त–चंचल (2) मुढ़–ज्ञान–विज्ञान से शून्य (3) विक्षिप्त–अशान्त एवं व्याकुल (4) एकाग्र (5) निरूद्ध।

क्षिप्त अवस्था में मन संसार के कार्यों में फंसा रहता है । कभी भी संतुष्ट अनुभव नहीं करता है । सदा व्यस्त रहता है ।

मूढ़ अवस्था में मन भूल जाता है कि उसे क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए । यह धर्म, अधर्म, कर्तव्य–अकर्तव्य के बारे में नहीं सोचता । केवल काम, क्रोध व लोभ का गुलाम हो जाता है ।

विक्षिप्त अवस्था में मन व्याकुल होकर कार्य करता है । कभी–2 दु:ख जनक विषयों को छोड़कर सुख जनक विषयों में लीन हो जाता है और उसी में स्थिर रहता है ।

एकाग्र अवस्था में मन किसी एक बाहरी या आभ्यन्तर वस्तु में स्थिर हो जाता है । चित्त की रजोवृत्ति और तमोवृत्ति वश में हो जाती है। मन में सात्विक वृत्ति उत्पन्न होने लगती है ।

निरूद्ध अवस्था में मन की सभी वृत्तियां स्थिर हो जाती है । कोई हलचल व अशान्ति नहीं रहती । निरूद्ध अवस्था ही ध्यान के लिए सर्वोत्तम स्थिति है ।

मन के तीन गुण/दोष हैं–(1) राग (2) द्वेष (3) मोह ।

मन को प्राणायाम के द्वारा एकाग्र करना संभव है । लेकिन निरुद्ध अवस्था के लिए प्राणायाम के साथ–2 अष्टांग योग का आचरण में पालन करना आवश्यक है ।

मन अशुद्ध होने के मुख्य कारण है–मांसाहार करना, नशा करना, अश्लील साहित्य पढ़ना, अविद्या का होना व सत्य आचरण न करना ।

मन को वश में करने के उपाय है –

(1) विद्या अर्थात् ज्ञान–अध्यात्मिक ज्ञान (2) बुरे संकल्पों को त्यागना (3) सत्संग व स्वाध्याय (4) अष्टांग योग का पालन (5) प्राणायाम (6) ईश्वर भक्ति–उपासना (7) व्यवहार काल में मन पर संयम ।

मन की मुख्य विशेषता है कि यह एक समय में एक ही कार्य कर सकता है दो नहीं । इसलिए प्राणायाम की कुछ क्रियायों व ध्यान से इसे कुछ सीमा तक संयम में रखा जा सकता है । पूर्ण रूप से इसे वश में करने के लिए उपारोक्त सभी उपायों का पालन करना चाहिए ।

मन को शुद्ध करने से शांति प्राप्त होती है । जीवन में स्थिरता व संतुष्टि की उपलब्धि होती है ।

अन्त:करण

आत्मा के निकटतम साधन मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार हैं । इनके समुह को अन्त:करण कहते हैं । सत्संग, भक्ति व ध्यान से अन्त:कण शुद्ध पवित्र, व धार्मिक हो जाता है तत्पश्चात् हमें श्रेष्ठ कर्म करने की प्रेरणा मिलती है । मन, चित्त, बुद्धि व अहंकार के कार्य निम्नलिखित हैं–

चित्त : चित्त की उत्पत्ति अहंकार से हुई है । यह जड़ है यह सत्, रज् और तम् से बनी एक वस्तु है । सृष्टि के आरम्भ में यह हर एक जीवात्मा को मिलता है । यह मुक्ति मिलने पर या महाप्रलय होने पर नष्ट होता है । यह चेतन इसलिए दिखाई देता है क्योंकि उस पर आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ रहा है । यह आत्मा के साथ रहता है मस्तिष्क का भाग नहीं है यह सूक्ष्म शरीर का भाग है । यह संस्कारों का भण्डार है । यह

सदा चलायमान, अस्थिर व चंचल बना रहता है ।

सभी प्रकार की वासनाएं, संकल्प, इच्छायें, संस्कार और विचार – जो हमारे अन्दर पैदा होते हैं या एकत्र होते हैं, उन सब का यह भण्डार है । हमारे सभी प्रकार के कर्मों के संस्कार भी इसमें जमा होते रहते हैं। इसका स्वभाव है–देखी हुई, सुनी हुई ओर कही गई बातों को बार–2 स्मरण करना । इस प्रकार बार–2 चिन्तन करने से इन बातों की ओर इसका लगाव हो जाता है । लगाव के कारण इसको कोई दूसरी बात अच्छी नहीं लगती । इस प्रकार चित्त में अच्छी या बुरी बात टिक जाने की प्रवृत्ति होती है ।

मनुष्य के चित्त में पाप और पुण्य–दोनों संस्कार रहते हैं । दोनों में लगातार संग्राम होता रहता है । कभी पाप की विजय होती है तो कभी पुण्य की । चित्त में बैठे लोभ के संस्कारों के कारण ही हम काम, क्रोध या लोभ के कार्य करते हैं । इसके विपरीत पुण्य संस्कारों के कारण हम दान, समाज सेवा आदि करते हैं । अतः पूर्व जीवन के संस्कारों के अनुसार हमारा वर्तमान जीवन चलता है । **चित्त एक समय में विभिन्न स्थानों पर विद्यमान रहता है । यह एक समय में विभिन्न विचार या योजनाएं बना सकता है । इसके विपरीत मन एक समय में एक ही कार्य कर सकता है ।**

प्राण और शरीर के साथ चित्त का गहरा संबंध है । प्राण और शरीर को स्थिर करने से चित्त शान्त रहने लगता है । यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार की साधना से चित्त निर्मल हो जाता है । यह जितना निर्मल होगा, ध्यान में उतनी जल्दी ही सफलता मिलेगी । अशुद्ध चित्त या चंचल चित्त से ध्यान होना असंभव है ।

मन की तरह चित्त की भी पांच अवस्थायें हैं । मन व चित्त की अवथायें लगभग एक सी है ।

(1) **क्षिप्त चित्तः**–इस अवस्था में चित्त अधिक चंचल होता है । रजः और तमः गुण अधिक होने के कारण चित्त किसी एक विषय में स्थिर नहीं रहता । सुख के लिए वह विभिन्न विषयों को ढूंढता रहता है। ऐसे चित्त वाले व्यक्ति द्वारा पाप करने की सम्भावना अधिक होती है ।

ऐसा व्यक्ति कभी भी सन्तोष जनक अध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता।

(2) **मूढ़ चित्तः**–मूढ़ चित्त वाले व्यक्तियों की बुद्धि मलिन होती है । शरीर के सुख को ही यह सब कुछ समझते हैं । यह व्यक्ति काम, क्रोध, निद्रा, आहार, भोग, विलास वाला ही जीवन व्यतीत करते हैं ।

(3) **विक्षिप्त चित्तः**–विक्षिप्त चित्त वाले लोग अपने चित्त को किसी भी विषय में (मुख्य रूप से धार्मिक) केन्द्रित रख सकते हैं । ऐसे व्यक्ति अपने चित्त को निरूद्ध करके ध्यान में सफलता पा सकते हैं । ऐसे लोग मानव श्रेणी में आते हैं । ऐसे व्यक्ति साधारण साधक होते हैं।

(4) **एकाग्र चित्तः**–ऐसे व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने चित्त को संयम में रखते हैं । ये व्यक्ति समाज सेवा, साहित्य सेवा, लेखन या अन्य श्रेष्ठ कार्यों में अपना चित्त एकाग्र कर लेते हैं ।

(5) **निरूद्ध चित्तः**–जब चित्त पूर्णतयः शान्त रहता है, वह किसी भी प्रकार की चिन्ता नहीं करता है, सुख–दुःख में अप्रभावित रहता है, ऐसी स्थिति को निरूद्ध चित्त कहते हैं । निरूद्ध चित्त वाले व्यक्तियों को ध्यान साधना में सफलता जल्दी मिलती है ।

चित्त को संयम में रखने के लिए अर्थात् एकाग्र व निरूद्ध बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय हैं ।

(1) जो लोग सुखी हैं उनके साथ मित्रता रखें । उनके साथ द्वेष, ईर्ष्या न करें ।
(2) जो लोग दुखी हैं उन पर करूणा करें । यथा संभव व यथा योग्य उनकी सहायता करें । उनके दुःखों को दूर करने की कोशिश करें ।
(3) जो लोग पुण्य के मार्ग पर चल रहे हैं उनके लिए प्रसन्नता का भाव रखें ।
(4) जो लोग अन्याय व पाप के मार्ग पर चल रहे हैं जिनको धर्म के मार्ग पर लाने का प्रयत्न सफल नहीं हुआ, उनसे दूर रहें । ऐसे रहो जैसे वे तुम्हारे लिए संसार में हैं ही नहीं । अर्थात् उनके साथ उपेक्षा का व्यवहार करें ।
(5) सदा प्रसन्न रहें ।

बुद्धि :

हम अपने दैनिक चर्या में कर्म करने के लिए समय-2 पर जो भी निर्णय लेते रहते हैं वे सभी निर्णय बुद्धि द्वारा लिये जाते हैं। बुद्धि भी जड़ है। परन्तु आत्मा के सम्पर्क में आकर यह सक्रिय हो जाती है। बुद्धि मन को नियंत्रण में रखती है। बुद्धि को तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं:-

1. **बुद्धि**–ऐसी बुद्धि जिससे हम अपने जीवन को चलाने के लिए समय-2 पर ठीक या गलत निर्णय लेते हैं।
2. **कुबुद्धि**–ऐसी बुद्धि जिसके द्वारा हम अपने स्वार्थ के लिए समाज व अन्य मनुष्यों के हित का ध्यान नहीं रखते।
3. **सुबुद्धि**–ऐसी बुद्धि जो हमें निष्कर्म व सुकर्म करने के लिए प्रेरित करती है।

बुद्धि के बिगड़ने के मुख्य कारण हैं-

(1) बुरी संगत (2) भ्रम (3) इन्द्रियों का वश में न होना (4) आधुनिक दूषित वातावरण (5) असात्विक आहार और (6) बुरे साहित्य का पढ़ना (7) टेलीविजन पर दिखाये जाने वाले अश्लील कार्यक्रम व दूषित सिनेमा (8) अभिमान (अहंकार)।

बुद्धि को सुबुद्धि बनाने के उपाय हैं-

(क) अच्छी संगति (ख) भ्रम या वहम को वश में रखना (ग) इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना (घ) सात्विक आहार लेना (ड़) आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय करना व सत्संग (च) प्रसन्नता (छ) योग (ज) परिश्रम व तप।

अधिकतर रोगों और बुराइयों के होने का कारण बुद्धि बिगड़ना है।

बुद्धि और भाग्य में अन्तर है। बुद्धि से भाग्य बनता है। बुद्धि न हो या इसका सही प्रयोग न किया जाये तो सौभाग्य भी दुर्भाग्य बन जाता है। अच्छे कर्म करने के लिए सुबुद्धि की आवश्यकता होती है। इसलिए बुद्धि भाग्य से ज्यादा महत्व रखती है।

अहंकार :

अहंकार "मैं" की अनुभूति करवाता है। यह केवल मेरी सत्ता अर्थात् "मैं हूँ" पर ही ध्यान देता है।

कर्म :

जीवात्मा सदा सुख की प्राप्ति और दु:ख से छुटकारा पाना चाहता है। इसके लिए वह जो भी चेष्टा मन, इन्द्रिय या शरीर से करता है उसे कर्म कहते हैं। सृष्टि के नियमानुसार जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है और कर्म का फल भोगने में परतन्त्र है। जीवात्मा अल्पज्ञ है। इसका सामर्थ्य बहुत कम है। अपने बुरे कर्मों के फल को भोगना या प्राप्त करना भी नहीं चाहता। इसलिए परमेश्वर ने फल व्यवस्था अपने अधिकार में ले रखी है। कुछ अशुद्ध कर्मो का दंड परिवार और समाज में अच्छी व्यवस्था बनाये रखने के लिए माता-पिता, गुरु और न्यायपालिका भी देते हैं।

कर्म मुखयत: मन, वाणी या शरीर से होता है। कर्म हमारी सबसे बड़ी पूजा है। कर्मफल के अनुसार ही हम जन्म, सुख, दु:ख पाते हैं। हमारा प्रत्येक कर्म हमारे सूक्ष्म शरीर पर अंकित हो जाता है। सुक्ष्म शरीर प्रत्येक योनि में जीवात्मा के साथ रहता है। यही कर्म हमें जीवन मरण के बन्धन में बांधते हैं।

मन से तीन प्रकार के अच्छे कर्म किये जा सकते हैं-

(1) दया (2) अस्पृहा (अनिच्छा) और (3) आस्तिकता।

मन द्वारा द्रोह, स्पृहा और नास्तिकता अशुभ कार्य भी किये जा सकते हैं।

वाणी से किये जाने वाले शुभ कर्म हैं-

(1) सत्य बोलना (2) हितकर बोलना (3) मीठा बोलना।

चार प्रकार के अशुभ कर्म मनुष्य वाणी से कर सकता है।

(1) झूठ बोलना (2) अहितकर बोलना (3) कठोर बोलना और (4) व्यर्थ बोलना।

शरीर के द्वारा जीवात्मा तीन प्रकार के शुभ कर्म कर सकता है-

(1) दान देना (2) सेवा करना (3) रक्षा करना।

बुरे कर्म भी जीवात्मा शरीर द्वारा कर सकता है-

(1) हिंसा करना (2) चोरी करना (3) व्यभिचार करना।

शुभ (अच्छे) कर्म करने से हमें अच्छा फल मिलता है । हमारे संस्कार अच्छे बनते हैं । चित्त की शुद्धि होती है व मन ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना और ध्यान में लगता है । इसके विपरीत बुरे कर्म करने पर हमें दुःख की प्राप्ति होती है, बुरे संस्कार बनते हैं, हम अधर्म के रास्ते पर चलना शुरू कर देते हैं, ईश्वर साधना में मन नहीं लगता । अन्त में मृत्यु के बाद विभिन्न प्रकार की नीच योनियों में जाकर कष्ट सहने पड़ते हैं ।

दान, दक्षिणा, ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना आदि से बुरे कर्मों के फलों को नष्ट नहीं किया जा सकता है । इनके करने से केवल अच्छे संस्कार बनते हैं, पुण्य प्राप्त होता है । भविष्य मे बुरे कर्म करने की प्रवृत्ति से छुटकारा मिलता है ।

जीवात्मा जो भी अच्छे बुरे कर्म करता है – मानसिक, वाचिक या शारीरिक – सभी का फल, ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार उसको भोगना पड़ता है ।

वैदिक कर्म फल व्यवस्था के अनुसार अच्छे और बुरे कर्मों का फल अलग-2 मिलता है । यहाँ पर जमा घटा का सिद्धान्त लागू नहीं होता है । जीवात्मा को सभी कर्मों का फल सुख-दुःख के रूप में मिलता है। हमारे शुभ व अशुभ कर्मो से हमारे सात जन्म और सात पीढ़ियां प्रभावित होती हैं अर्थात् हमारे शुभ कर्मों के फल का लाभ धीरे-धीरे अगले सात जन्मों तक तो मिलता ही है इसके साथ-2 हमारी अगली सात पीढ़ियों में पैदा होने वाली सन्तान भी इसमें भागीदार बनती है । इसके विपरीत हमारे अशुभ कर्मों का फल दुःख के रूप में धीरे-धीरे न केवल हमें अगले सात जन्मों तक भुकतना पड़ता है बल्कि हमारी भविष्य की सात पीढ़ियों में होने वाली सन्तान भी दुःख को भोगती है । **यही कारण है कि अधर्म से एकत्रित किया हुआ धन दो या तीन पीढ़ियों के बाद अवश्य ही खत्म हो जाता है । अतः हमें अपने आचरण में अष्टांग योग का अवश्य पालन करना चाहिए ।**

फल की दृष्टि से कर्म दो प्रकार के होते हैं ।

(1) **निष्काम कर्मः**-जो कर्म संसारिक फल को प्राप्त करने के

लिए न किये जायें, उन्हें निष्काम कर्म कहते हैं । सभी कर्म जो केवल ईश्वर या मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से किये जायें, इस श्रेणी में आते हैं । यह कर्म सदैव अच्छे होते हैं-बुरे नहीं । इनका फल ईश्वर अनुभूति या ईश्वर आनन्द की प्राप्ति के रूप में होता है । यह कर्म हमें बन्धनों से मुक्त रखते हैं ।

(2) **सकाम कर्म :**-ऐसे कर्म जिनका उद्देश्य धन, यश, सन्तान आदि प्राप्त करना होता है, सकाम कर्म कहलाते हैं । यह तीन प्रकार के होते हैं-

(क) **अच्छे कर्म**- सेवा, दान, परोपकार करना आदि ।

(ख) **बुरे कर्म**- चोरी करना, असत्य बोलना, धोखा देना आदि

(ग) **मिश्रित कर्म**- खेती करना आदि । इसमें पाप और पुण्य दोनों मिश्रित रहते हैं ।

इन कर्मों का फल अच्छा और बुरा दोनों हो सकता है । इनका फल इस जीवन में भी भोगा जा सकता है और मरने के बाद अन्य योनियों में भी ।

एक अन्य दृष्टिकोण से कर्म चार प्रकार के होते हैं-

(1) **कर्म**-वे कर्म जो हम दूसरों के उपकार के लिए करते हैं जैसे : गरीबों और दुखियों की सहायता करना, गरीबों के लिए अस्पताल, स्कूल या अनाथालय खोलना ।

(2) **अकर्म**-वे सभी क्रियायें जो हम अपने जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए करते हैं जैसे-खाना, पीना, सोना, धर्मानुसार कमाना, ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना आदि करना ।

(3) **विकर्म**-ऐसी क्रियायें जिनका उद्देश्य दूसरों को हानि पहुँचाना होता है विकर्म कहलाते हैं जैसे-दूसरों से लड़ना या एक दूसरों को लड़ाना, घृणा करना या पैदा करवाना, लड़ाई-झगड़े करना या करवाना, दूसरों को नीचा दिखाना आदि ।

(4) **सुकर्म**-ऐसी क्रियायें जिनसे स्वयं के साथ-2 दूसरों को भी लाभ हो जैसे-दान देना, यज्ञ करना, दूसरों का सही मार्गदर्शन करना आदि ।

सुख-दुःख :

प्रसन्नता या स्वतंत्रता आदि जिसको प्राप्त करने के बाद मनुष्य छोड़ना नहीं चाहता, सुख कहलाता है । इसके विपरीत पीड़ा या कष्ट आदि जिससे मनुष्य बचना चाहता है, दुःख कहलाता है ।

जब परिस्थितियां हमारे अनुकूल होती हैं तो हमें सुख की अनुभूति होती है । परिस्थितियां प्रतिकूल होने पर हमें दुःख की अनुभूति होती है। संसार में पूर्ण सुख नहीं है । अस्थाई सुख है । सुख के साथ कोई न कोई दुःख भी लगा रहता है ।

दुःख की अनुभूति होने पर ही हम ईश्वर के सुख व आनन्द का अनुभव कर सकते हैं ।

सुख का आधार धर्म है । दुख का आधार अधर्म है । सुख प्राप्त करने और दुःख से छुटकारा पाने के लिए हमें अविद्या का नाश करना चाहिए, अपनी बुद्धि को सुबुद्धि बनाना चाहिए, वेदों और आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए । अच्छे कर्म करने के साथ-2 अपनी इन्द्रियों को संयम में रखना चाहिए ।

सुख-दुःख की अनुभूति मन की अवस्था पर निर्भर करती है । यदि मन अच्छा सोचेगा तो शुभ कार्य होंगे । फलस्वरूप सुख पैदा होगा । इसके विपरीत यदि मन गलत सोचेगा तो अशुभ कार्य होंगे और अन्त में दुःख भोगना पड़ेगा । मन के बिना कोई भी इन्द्रिय कार्य नहीं करती । अतः सुख प्राप्ति के लिए मन शुभ संकल्प वाला बनाना चाहिए ।

मनुष्य के अन्दर से सात बड़े दुःख पैदा होते रहते हैं – भय, अहंकार, मोह, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ । इन से बचने का एक ही उपाय है कि हमारा मन शुद्ध, साफ और पवित्र विचारों वाला हो । **प्राणायाम और योगाभ्यास मन को शुद्ध व संयम करने में बहुत सहायक होते हैं ।**

स्वर्ग-नरक :

स्वर्ग या नरक किसी विशेष स्थान का नाम नहीं है । जो व्यक्ति विद्वान व समपन्न माता पिता के यहाँ जन्म लेता है, धर्मानुसार धन कमाता

है, शुद्ध भक्ति व ईश्वर उपासना करता है । सभी ऐश्वर्य, सुख, शान्ति, आनन्द को प्राप्त करता है इस स्थिति को स्वर्ग कहते हैं ।

पंचमहायज्ञ, स्वाध्याय, दान, पुण्य, समाज सेवा आदि स्वर्ग प्राप्ति के साधन हैं ।

जीवन में अभाव, कष्ट, दुःख, पीड़ा बाली स्थिति को नरक कहते हैं । नरक प्राप्ति के मुख्य कारण हैं-असत्य बोलना, अशुभ कर्म करना, भ्रष्टाचार, व्यभिचार, मांसाहार व पूर्व कर्मफल ।

अशुभ कर्मों के कारण मरने के पश्चात् नीच योनि में जन्म लेना भी नरक प्राप्ति कहलाती है ।

मोक्ष :

स्वामी दयानन्द के अनुसार मोक्ष कोई आने जाने वाला पदार्थ नहीं है तथा इसकी प्राप्ति शरीर को भी नहीं होती । जब आत्मा विद्या द्वारा अपने सम्पूर्ण अज्ञान को हटाकर मुक्ति सुख का अनुभव करता है, यही मोक्ष है ।

संसार के बन्धनों से छूटकर मुक्ति प्राप्त करने के लिए महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के नवम सम्मुल्लास में परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, साधन चतुष्टय एवं योगाभ्यास का निर्देश करते हैं । इनसे जीव के गुण, कर्म, स्वभाव सुधरते हैं । योगाभ्यास अर्थात् ध्यान से मन आदि सब आन्तरिक पदार्थों का साक्षात्कार होता है ।

पुनर्जन्म :

महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के नवम सम्मुल्लास में वर्णन करते हैं कि जन्म अनेक होते हैं । यदि एक ही जन्म माने तो ईश्वर न्यायकारी न रह सकेगा । ईश्वर तो स्वभाव से पवित्र और न्यायकारी है । वह पूर्व जन्म के पाप-पुण्य के बिना किसी को सुख-दुःख नहीं दे सकता है ।

नाना प्रकार के जन्म मरण में जीव तब तक पड़ा रहता है जब तक वह उत्तम कर्म, शुद्ध उपासना व ज्ञान के द्वारा मुक्ति प्राप्त नहीं कर लेता है ।

उपासना :

समाज में दो प्रकार की उपासना प्रचलित हैं- निर्गुण उपासना और सगुण उपासना । निर्गुण उपासना का अर्थ निराकार (ईश्वर) की उपासना से लिया जाता है । सगुण उपासना में ईश्वर को साकार भी माना जाता है । इस मत के अनुसार ईश्वर अवतार लेता रहता है जो कि वेद सम्मत नहीं है। ऋषि दयानन्द ने भी अपने सभी ग्रन्थों में इस साकार मत को मान्यता नहीं दी है। उनके अनुसार सगुण एवं निर्गुण ईश्वर अलग-अलग नहीं है।

सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, सृष्टिकर्ता, न्यायकारी, नित्य, दयालु और पवित्र आदि गुणों के कारण ईश्वर सगुण कहलाता है ।

अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनुपम, अजर, अमर, निराकार, निर्विकार एवं अभय आदि ईश्वर के निर्गुण लक्षण हैं । **अतः ईश्वर सगुण व निर्गुण एक ही है ।**

जड़ वस्तुओं की उपासना करने से हम अज्ञान, अधर्म और क्लेशों में लिप्त रहते हैं । ईश्वर को निराकार मान कर उपासना करने से शुद्ध ज्ञान, धर्म व आनन्द की प्राप्ति होती है । अतः हमें संसारिक वस्तुओं की उपासना को छोड़कर केवल ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करनी चाहिये ।

उपासना काल

वह समय जिस वक्त हम ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना व ध्यान करते समय अपने मन और चित्त को एकाग्र करके केवल ईश्वर का ही ध्यान करते हैं उसे उपासना काल कहते हैं । उपासना काल में ही हम वास्तव में ईश्वर के समीप बैठते हैं । उससे विशेष रूप में प्रतिदिन प्रातः व सायं वार्तालाप करते हैं । निष्काम कार्य करने की प्रेरणा लेते हैं। यह समय 1 मिनट से लेकर घंटों तक हो सकता है और भक्त की श्रद्धा और भक्ति पर निर्भर करता है ।

व्यवहार काल :

ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना, ध्यान का समय छोड़कर वाकी दिन

की दिनचर्या व कार्य पद्धति व्यवहार काल कहलाती है । उपासना काल में ध्यान व ईश्वर से वार्तालाप में सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि व्यवहार काल में हमारा आचरण धर्मानुसार है या नहीं । जैसे-2 व्यवहार काल में हमारे आचरण में उन्नति व सुधार होता जाता है वेसे-वैसे व उसी गति से हमें ईश्वर भक्ति व ध्यान में सफलता प्राप्त होती जाती है । इसके विपरीत **यदि व्यवहार काल में हमारा आचरण ठीक नहीं है तो न तो भक्ति व ध्यान में मन लगता है और न ही ईश्वर कृपा होती है ।**

पर विद्या :

पर विद्या का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान । वेदों और उन पर आधारित आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना, चिन्तन करना, मनन करना व उनके अनुसार अपना जीवन चलाना । आध्यात्मिक ज्ञान व उस पर आचरण करने से जन्म मृत्यु के आवागमन से छुटकारा मिल जाता है । जीवन में शान्ति की अनुभूति होती है । ईश्वर का आनन्द प्राप्त होता है । आज हमें वैज्ञानिक व आर्थिक उन्नति के बाद भी सभी जगह अशान्ति ही अशान्ति दिखाई देती है । इसका मुख्य कारण है कि मनुष्य ने पर विद्या को भुला दिया है ।

अधिकतर आर्यसमाजों में रविवारीय सत्संग का आयोजन होता है। इसमें उपस्थित होकर भी हम वेदानुसार आध्यात्मिक ज्ञान आसानी से प्राप्त कर सकते हैं ।

अपर विद्या :

इसका अर्थ है भौतिक ज्ञान । इसको अध्यात्म की भाषा में अविद्या भी कहते हैं । भौतिक ज्ञान में उन्नति करना भी अति आवश्यक है । आज के युग में भौतिक विकास के अभाव में जीवन जीना असंभव है। वेद व उपनिषद भी हमें भौतिक विकास करने की प्रेरणा देते हैं । वे हमारा मार्गदर्शन करते हैं कि विद्या और अविद्या में मनुष्य को समन्वय बना कर चलना चाहिये । भौतिक ज्ञान से मनुष्य को अपना जीवन सुखी बनाना चाहिए ।

मस्तिष्क द्वारा अर्जित संसारिक ज्ञान (भौतिक) शरीर के मृत होने पर नष्ट हो जाता है । परन्तु इसके द्वारा अर्जित शुद्ध ज्ञान, विद्या और

किये गये शुभ व निष्काम कार्य के संस्कार सूक्ष्म शरीर का हिस्सा बन जाते हैं और सदैव जीवात्मा के साथ रहकर अच्छा फल देते हैं ।

जन्म :

जन्म लेना हमारे वश में नहीं है । हम अपने कर्मफल के कारण परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार संसार में जन्म लेते हैं । हम स्वयं अपनी योनि, माता-पिता, परिवार या स्थान को निश्चित नहीं कर सकते हैं । यह पूर्व जन्म के कर्मों के आधार के अनुसार ही ईश्वर द्वारा निश्चित किया जाता है । पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के अनुसार ही हमें यह मानव देह प्राप्त हुई है । इस जीवन में किये गये अच्छे या बुरे कर्मों के अनुसार हमें नया जन्म व शरीर मिलेगा । अतः शान्त मृत्यु व इसके बाद अच्छी योनि में जन्म पाने के लिए हमें अपने कर्म और आचरण को ठीक करना चाहिए ।

मृत्यु :

मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं । अपने कर्मों के अनुसार या निर्वल और रोगी शरीर को जब आत्मा छोड़ती है तो उसे मृत्यु कहते हैं । इस प्रकार पुराना शरीर को छोड़कर आत्मा नया शरीर धारण कर लेता है । जो मनुष्य अच्छे कर्म करता है, उसको ईश्वर पर विश्वास होता है कि उसको अगला जन्म अच्छा ही मिलेगा । वह मृत्यु से डरता नहीं बल्कि शान्ति से मृत्यु का सामना कर लेता है । इसके विपरीत जो व्यक्ति अच्छे कर्म नहीं करते, उनके लिए मृत्यु भयानक और दुःखदायी होती है।

मृत्यु का चिन्तन हमें अधर्म और बुराइयों से बचाने के साथ-2 प्रभु भक्ति की ओर भी ले जाता है ।

पंच महायज्ञ :

मनुष्य की संरचना ईश्वर की सर्वोत्तम रचना है । मानव शरीर समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ है । इस शरीर के माध्यम से हम शुभ व निष्कर्म करते हुए मोक्ष को प्राप्त करने के अधिकारी बनते हैं । मानव जीवन को सफल बनाने में पंचमहायज्ञ का बहुत बड़ा योगदान है । ये

संक्षिप्त में निम्नलिखित हैं ।

(1) **ब्रह्मयज्ञ :** प्रातः सूर्य निकलने से पहले ब्रह्मबेला में शौच, मुंह-हाथ धोना, स्नान करने के पश्चात् और सायं सूर्यास्त के समय नित्य प्रतिदिन ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना उपासना, ध्यान व सन्ध्या करना ब्रह्मयज्ञ कहलाता है । आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन भी ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत आता है।

ब्रह्मयज्ञ का पालन करने से हमें विद्या धर्म आदि गुणों की प्राप्ति होती है ।

(2) **देव यज्ञ :** प्रातः एवं सायं-दोनों समय अथवा कम से कम प्रातःकाल नित्य प्रतिदिन हवन करने की प्रक्रिया को देवयज्ञ या अग्निहोत्र कहते हैं । देवयज्ञ में घी, सामग्री, समिधा आदि वस्तुओं के द्वारा यज्ञ करते हैं । अग्निहोत्र (हवन) से वायु की शुद्धि होती है, दुर्गन्ध व मलिनता का नाश होता है । विविध रोगों से मुक्ति मिलती है, **यज्ञ करते समय दीर्घ श्वसन क्रियाओं का प्रयोग करने से शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है और आयु लम्बी होती है ।** स्थान की पवित्रता होती है, परोपकार की भावना व आत्मिक उन्नति होती है। ईश्वर भक्ति में मन लगता है ।

साधारणतयः हमें वैदिक विधि से ही यज्ञ करना चाहिए । वैदिक विधि से यज्ञ करना कठिन नहीं है । इस विधि को किसी भी आर्यसमाज में 8-10 बार जाकर सीखा जा सकता है ।

जब तक वैदिक विधि से यज्ञ करना न आ जाये तब तक निम्न विधि से भी प्रातः प्रतिदिन यज्ञ कर सकते हैं । यह विधि बहुत ही सरल है।

(1) शुद्ध आसन में बैठ जायें और 3 बार लम्बे श्वास लें ।
(2) (क) गायत्री मंत्र का एक बार उच्चारण करें ।
(2) (ख) कविता रूप में गायत्री मंत्र के अर्थ का उच्चारण करें।
(3) इसके बाद शुद्ध जल लेकर निम्नलिखित 3 मन्त्रों से तीन बार आचमन करें अर्थात् सीधे हाथ में तीन बार जल लेकर निम्नलिखित मन्त्र बोलने के बाद पीयें ।

(क) **ओ३म् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।**

मन में निम्नलिखित भाव रखें–
हे ईश्वर ! यह जल हमारे लिए सुखदायक हो ।

(ख) **ओ३म् अमृतापिधानमसि स्वाहा ।**
मन में निम्नलिखित भाव रखें–
हे ईश्वर ! आप विश्व के धारक व पोषक हैं ।

(ग) **ओ३म् सत्यं यशः श्रीर्मयी श्रीः श्रयतां स्वाहा ।**
मन में निम्नलिखित भाव रखें–
हे भगवन् ! हमें सत्यनिष्ठा, सुयश, सम्पत्ति और श्रेय दो ।

(4) अब हवन कुण्ड में कुछ सामग्री (10-15 ग्राम) डालें । इसके बाद उस पर 3-4 कपूर की टिकिया रखें ।

(5) अब हवन कुंड में 5 से 6 समिधायें (आम की लकड़ियां) वर्गाकार में (सामने दिये चित्र के अनुसार) रखें । हवनकुंड के आकार के अनुसार समिधायें कुल्हाड़ी की सहायता से पतली व छोटी पहले ही कर लें ।

(6) अब माचिस से दीपक प्रज्वलित करें । फिर श्रुवा (चम्मच) में कपूर लेकर उसको दीपक से स्पर्श करके जलायें व हवन की अग्नि प्रज्वलित करें । (हवन कुण्ड में डालें) अग्नि प्रज्वलित के साथ-2 गायत्री मन्त्र का उच्चारण करते रहें और हवन कुण्ड में 5-7 चम्मच घी सभी तरफ धीरे-धीरे डालें ताकि अग्नि पूर्ण रूप से प्रज्वलित हो जाये।

(7) अब गायत्री मंत्र के प्रत्येक पूर्ण उच्चारण के बाद स्वाहा बोल कर घी और सामग्री की 11 या 21 आहुतियां दें ।

(8) इसके बाद पूर्ण आहुति का मंत्र- **ओ३म् सर्वं वै पूर्णम् स्वाहा ।** का तीन बार उच्चारण करें । प्रत्येक उच्चारण के बाद घी व सामग्री की आहुति दें । अन्तिम आहुति के साथ एक छुआरा या मीठी खील या कुछ हलवा हवन कुण्ड में डालें ।

(9) फिर **सर्वे भवन्तु सुखिनः**-मंगल कामना मंत्र का उच्चारण करें ।

(10) तत्पश्चात् शान्ति पाठ करें ।
(यदि शान्ति पाठ का उच्चारण न कर सकें तो **ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः** बोल कर यज्ञ / हवन पूर्ण करें ।

हवन करने के लिए निम्न वस्तुयें चाहियें :-

1. एक छोटा हवन कुण्ड, 2. समिधा व कपूर, 3. हवन सामग्री, 4. देशी घी ।

समिधा व हवन सामग्री किसी भी आर्यसमाज मन्दिर से या बाजार से खरीदी जा सकती है ।

(3) **पितृयज्ञ :** अपने माता-पिता एवं अन्य वृद्ध सम्बन्धियों व विद्वानों की आज्ञा का पालन व सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है ।

इससे हमारे अन्दर कृतज्ञता की भावना जगती है । हमारा ज्ञान बढ़ता है । समाज उन्नति करता है ।

(4) **बलिवैश्वदेव यज्ञ :** सभी जीवों पर दया करना व यथासंभव यथाशक्ति प्रतिदिन उनको भोजन आदि देना बलिवैश्वदेव यज्ञ कहलाता है। जैसे प्रातः काल गाय को आटा या रोटी खिलाना, पक्षियों और अन्य जीव जन्तुओं को दाना देना, पानी देना, कुत्ते को रोटी व दूध देना आदि।

इसके पालन से हम पाप कर्म से बचते हैं । ईश्वर के दिये हुए धन का सदउपयोग होता है । मन को शान्ति का अनुभव होता है ।

(5) **अतिथि यज्ञ :** धार्मिक, परोपकारी, सत्य उपदेशक, पक्षपात रहित विद्वान, शान्त व सर्वहितकारी मनुष्यों के साथ-2 घर में आये अन्य अतिथियों की अन्न, भोजन आदि से सेवा करना अतिथि यज्ञ कहलाता है।

अतिथियों की सेवा करने से हमारे अन्दर विनम्रता का भाव पैदा होता है । हमारा धार्मिक ज्ञान बढ़ता है । समाज उन्नति करता है ।

नोट : जो गृहस्थी पंच महायज्ञ नित्य करते हैं वे कभी दुःखी नहीं रहते। उनमें दुःखों से लड़ने की शक्ति पैदा हो जाती है । कष्ट आने पर उनका आसानी से मुकाबला कर लेते हैं । उनके घरों व परिवारों में सदा सुख व शान्ति रहती है । ऐसे मनुष्य वास्तव में मानव कहलाते हैं ।

भाग – 2

अष्टांग योग

अष्टांग योग की सरल व्याख्या

हम सभी भक्त ईश्वर के दर्शन करना चाहते हैं । उसकी अनुभूति करना चाहते हैं । उसकी कृपा पाना चाहते हैं । अनेक महापुरुषों और ऋषियों ने अपनी-अपनी योग्यता व अनुभव के अनुसार ईश्वर प्राप्ति और उसकी कृपा के अनेकों उपाय बताये हैं व इस विषय पर अनेकों ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से एक प्रसिद्ध ग्रन्थ का नाम है-योगदर्शन। इसके रचयिता महर्षि पतञ्जलि हैं । यह ग्रन्थ वेदों पर आधारित है । ऋषि ने वेदों व अन्य ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया । तत्पश्चात् अपने अनुभव व वेदों के आधार पर मानव कल्याण के लिए और ईश्वर साक्षात्कार हेतु एक कार्यक्रम/विधि बताई जिसका पालन करने से हम संसारिक कार्य करते हुए ईश्वर की अनुभूति व आनन्द प्राप्त कर सकते हैं । इस ग्रन्थ में महर्षि पतञ्जलि ने योग में सफलता के लिए आठ निर्देश / उपाय बताये हैं । इन्हें योग के आठ अंग के नाम से जाना जाता है । इनके पालन करने से अर्थात् अपने आचरण में लाने से हमें न केवल ध्यान में सफलता मिलती है बल्कि हमारा जीवन शान्त, पवित्र, तेजोमयी और सुखमय बनता है । अष्टांग योग में बतायी गई बातें सभी मनुष्यों के कल्याण व उन्नति के लिए हैं चाहे वह व्यक्ति किसी भी जाति या समुदाय का हो । **यदि प्रत्येक मनुष्य अष्टांग योग के पहले सात अंगों का एक साथ पालन करना शुरू कर दे तो निसन्देह समाज, राष्ट्र व विश्व में मानव अधिकारों की रक्षा व शान्ति स्थापित हो सकती है ।**

अष्टांग योग के पालन करने से मुख्य रूप में निम्न लाभ हैं-

1. सुख-शान्ति, सन्तोष व तृप्ति जीवन में मिलती है ।
2. शरीर निरोग, मन स्थिर और प्रज्ञा बुद्धि की प्राप्ति होती है ।
3. अविद्या का नाश व जीवन की कठिनाइयों में सही निर्णय लेने की क्षमता बढ़ती है ।

4. शरीर, मन व इन्द्रियों पर नियन्त्रण रहता है ।
5. काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, द्वेष का नाश और सेवा, परोपकार, दया व दान की भावना में वृद्धि होती है ।
6. शारीरिक व मानसिक दु:खों को सहन करने की शक्ति बढ़ती है ।
7. ईश्वरीय गुणों की प्राप्ति और बुरे कर्मों से मनुष्य बचता है ।
8. आत्मा-परमात्मा का दर्शन होता है / अनुभूति होती है ।
9. समाज में शान्ति स्थापित होती है ।

योग का प्रथम अंग – यम

इसके पांच विभाग हैं । सामाजिक उन्नति व शान्ति के लिए इनका पालन करने से लाभ होता है ।

(1) अहिंसा :

मन, वाणी और शरीर से सदैव सभी प्राणियों के साथ द्वेषभाव त्याग कर प्रेमपूर्वक व्यवहार करना अहिंसा कहलाती है । कोई क्रिया अहिंसक है या हिंसक इसका निर्णय न्याय-अन्याय की कसौटी पर किया जाता है । न्यायपूर्वक दंड देना अहिंसा की और अन्यायपूर्वक सुख लेना हिंसा की श्रेणी में आता है ।

मन में किसी का बुरा करने का विचार, किसी को हानि पहुँचाने या मारने का विचार, कठोर वचन बोलना, किसी को शारीरिक दु:ख देना, चोट पहुँचाना, मार डालना-सभी कार्य हिंसा के अन्तर्गत आते हैं ।

अहिंसा का पालन करने से हमारे मन, वाणी व शरीर के विकार कम /दूर होते हैं । हमारा मन शान्त होता है और ध्यान में लगता है । सभी प्राणियों के प्रति मन से द्वेष भाव छूट जाता है । इसके विपरीत अहिंसक व्यक्ति का मन अशान्त, असन्तोष, अतृप्त व भयपूर्ण होता है जिसे वह दान-पुण्य व समाज-सेवा करके दूर करना चाहता है जो कि असंभव है।

(2) सत्य :

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में हमें सदा उद्यत

रहना चाहिए । यह सभी जानते हैं कि सत्य सबसे बड़ा धर्म और झूठ सबसे बड़ा पाप है । धर्म का आधार ही सत्य है । अतः हमें सदैव सत्य बोलना चाहिए । मीठा बोलना चाहिए । अप्रिय सत्य व प्रिय झूठ नहीं बोलना चाहिए । असत्य का आचरण करना ईश्वर भक्ति में मुख्य रूप से बाधक है ।

बिना मतलब के बोलना, दूसरों की निन्दा करना, कठोर शब्द बोलना या जिस सत्य को बोलने से किसी निरपराध व्यक्ति को कष्ट या हानि होवे यह सब पाप की श्रेणी में आते हैं । इन सबसे यथा संभव बचने का प्रयास करना चाहिए ।

सत्य का पालन करने से जीवन में निर्भीकता आती है, समाज में मनुष्य का विश्वास बनता है, मन शान्त होता है व ईश्वर साक्षात्कार में सफलता के साथ-2 सभी उत्तम कार्यों में सफलता मिलती है ।

इसके विपरीत असत्य को आचरण में लाने से मानसिक चिन्तायें बढ़ती हैं, आत्मग्लानि होती है और हमारे पाप कर्म बढ़ते हैं । अतः हमें हमेशा सत्य का ही पालन करना चाहिए ।

(3) अस्तेय :

मन, वाणी और शरीर से चोरी छोड़ देना अस्तेय कहलाता है । दूसरों की वस्तु बिना पूछे ले लेना या प्रयोग करना चोरी की श्रेणी में आता है चाहे वह वस्तु अपने किसी रिश्तेदार या संबंधी की ही क्यों न हो । बिना परिश्रम या अन्याय द्वारा धन एकत्रित करना भी चोरी के अन्तर्गत आता है । दूसरों के मानव अधिकारों का हनन करना, रिश्वत लेना, कार्यकाल में कर्तव्य का पालन न करना, कार्य में लापरवाही वरतना, पूरा न तोलना, उचित मूल्य से अधिक लेना, झूठ बोलकर सामान बेचना आदि कार्य भी अस्तेय (चोरी) की श्रेणी में आते हैं । इन सब दुर्गणों से हमें बचना चाहिए ।

अभावग्रस्त गरीब व्यक्ति दूसरे के पदार्थों को छीनने या पाने का सदा प्रयत्न करते हैं । अतः उनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हमें हमेशा अपने पदार्थ यथा शक्ति व यथासंभव उनको दान करने चाहिए ।

इससे अस्तेय की स्थापना होती है ।

अस्तेय का पालन करने से शान्ति, प्रसन्नता, सन्तुष्टि व सुख की अनुभूति होती है । हम समाज में विश्वास पात्र व श्रद्धेय वन जाते हैं । हमारी अध्यात्मिक उन्नति होती है और हमें भौतिक पदार्थों की प्राप्ति होती है । इसके साथ-2 हम प्रभु साक्षात्कार के अधिकारी भी बनते हैं।

(4) ब्रह्मचर्य :

सभी इन्द्रियों पर यथायोग्य संयम रखना ब्रह्मचर्य कहलाता है । यह संयम मन, वचन व कर्म से करना चाहिए । इसके अन्तर्गत वाल्यावस्था में विवाह न करना व उपस्थ इन्द्रिय का संयम रखना, वेद व आर्ष ग्रन्थ पढ़ना, विवाह के बाद भी ऋतुगामी बना रहना, और परस्त्री गमन आदि व्यभिचार को मन, बचन, कर्म से त्याग देना आता है।

आचार्य चरक के अनुसार यदि हम अपने शरीर को स्वस्थ रखना चाहते हैं, उसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे रोग मुक्त बनाना चाहते हैं, ईश्वर का आनन्द पाना चाहते हैं तो हमें अपने वीर्य की रक्षा करनी चाहिए । अतः हम जो कुछ खाते हैं उसके सत्व को संभाल कर रखें । हमारे भोजन से एक प्रकार का रस बनता है, रस से रक्त बनता है, रक्त से चर्वी बनती है, चर्वी से हड्डी बनती है, हड्डी से मज्जा बनती है, मज्जा से वीर्य बनता है, वीर्य से ओज बनता है । इसी ओज से हमारा मुखमण्डल चमकता है, दिमाग तेज होता है और यह ओज ही आत्मा का भोजन है । ईश्वर के आनन्द और अनुभूति को प्राप्त करने में यह अति सहायक होता है ।

ब्रह्मचर्य के पालन के लिए महापुरुषों व ऋषियों के चरित्र का चिन्तन करना चाहिए, आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए । इसके साथ-2 सात्विक भोजन, नियमित निद्रा, उचित दिनचर्या, आसन, प्राणायाम व व्यायाम करना चाहिए । कुसंगति व मन को विचलित करने वाले दृश्य, अश्लील सिनेमा, टेलीविजन पर दिखाये जाने वाले दूषित कार्यक्रम व गन्दे उपन्यास आदि से बचना चाहिए ।

ब्रह्मचर्य का पालन करने से शारीरिक तथा बौद्धिक बल की वृद्धि होती है । ध्यान में सफलता जल्दी मिलती है ।

(5) अपरिग्रह :

मन, वाणी व शरीर से अपनी योग्यतानुसार अनावश्यक भौतिक पदार्थों की इच्छा न करना, उनका संग्रह न करना, अनावश्यक विचारों को मन में या तो न आने देना या उनको मन से निकाल देना अपरिग्रह कहलाता है । इसके विपरीत उचित या अनुचित साधनों का ध्यान न रखते हुए, धन, सम्पत्ति व अनावश्यक भौतिक पदार्थ एकत्रित करना परिग्रह कहलाता है । परिग्रह की आदत सदैव दूसरों को किसी न किसी रूप में पीड़ा देने के साथ-2 स्वयं के लिए भी परेशानी पैदा करता है । क्योंकि फिर हम अपने मुख्य लक्ष्य को छोड़कर धन व सम्पत्ति की रक्षा में ही लगे रहते हैं । जितना अधिक धन व भौतिक वस्तुओं का संग्रह हम करते जाते हैं, हमारा मोह उनके लिए उतना ही बढ़ता जाता है । फलस्वरूप यह हमारी ध्यान प्रक्रिया व मुक्ति में बाधा डालता है । अतः अपनी भौतिक भोग विलास की आवश्यकताओं को जीवन में सदा सीमित रखना चाहिए एवं सदैव प्रयत्न करना चाहिए कि हमारी कमाई धर्मानुसार हो और अधिक धन होने पर वह समाज के विकास कार्यों पर लगें ।

अपरिग्रह का पालन करने से हम छल, कपट, झूठ, अन्याय व ईर्ष्या से बचते हैं । आत्म चिन्तन व प्रभु भक्ति में मन लगता है । मन शान्त रहता है । ध्यान में सफलता मिलती है । हमारे अन्दर आत्मा के स्वरूप को जानने की इच्छा उत्पन्न होती है ।

योग का दूसरा अंग - नियम

इनका पालन करने से हमारी अध्यात्मिक उन्नति होती है । व्यक्तिगत विकास होता है । ध्यान साधना में सहायता मिलती है । इनकी संख्या भी पांच है ।

(1) शौच :

शौच से तात्पर्य शुद्धि से है ं मन वाणी व शरीर की पवित्रता को शौच या शुद्धि कहते हैं । यह दो प्रकार की होती है-

(क) **बाह्य शुद्धि** : इसके अन्तर्गत अपने वस्त्र, बाह्य स्थान,

शरीर व धनोपार्जन को पवित्र रखना आता है ।

(ख) **आन्तरिक शुद्धि** : इसके अन्तर्गत स्वाध्याय, सत्संग, प्राणायाम, सत्य बोलना, धर्मानुसार आचरण करना और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या आदि पर संयम रखना या उनका त्याग करना आता है ।

ध्यान में सफलता के लिए और अच्छा जीवन व्यतीत करने के लिए बाह्य व आन्तरिक – दोनों प्रकार की शुद्धि का विशेष महत्व है। इनका ध्यान न रखने से मनुष्य अपने वास्तविक लक्ष्य को कभी भी प्राप्त नहीं कर सकता । आजकल समाज में केवल बाह्य (बाहरी) शुद्धि पर ही ध्यान दिया जा रहा है । अधिकतर लोग पार्को में व स्वास्थ्य केन्द्रों में शरीर की बाहरी शुद्धि व देखरेख पर ही अपना ज्यादा समय व धन लगाते नजर आते हैं । स्वाध्याय व सत्संग आदि की ओर लोगों का आकर्षण न के बराबर है । फलस्वरूप अधिकतर लोगों में शान्ति और आत्म विश्वास की कमी पायी जाती है ।

शौच के पालन करने से हमें अपने शरीर के प्रति आसक्ति नहीं रहती । शरीर की नश्वरता का बोध होता है ं इसका अर्थ यह नहीं कि शरीर की स्वस्थता पर ध्यान नहीं देना है । शौच का पालन करने से ध्यान में मन लगता है । मन प्रसन्न रहता है । अतः हमें जीवन को दीर्घायु बनाने के लिए, आत्मिक शान्ति व ईश्वर साक्षात्कार के लिए अपने आहार-विहार व मन की शुद्धि पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

(2) सन्तोष :

अपनी योग्यता, शक्ति, ज्ञान व साधनों का पूर्ण प्रयोग करने के बाद जो फल प्राप्त होता है, उससे सन्तुष्ट होना सन्तोष कहलाता है । जो कुछ हमारे पास है उससे अधिक का लोभ न करना सन्तोष है । यदि पूर्ण पुरुषार्थ करने के बाद फल की प्राप्ति आशा से कम हो तो चिन्तित व हताश नहीं होना चाहिए । हाँ, कोशिश निरन्तर जारी रखना चाहिए । इसका यह तात्पर्य नहीं है कि व्यक्ति अपनी योग्यता व सामर्थ्य को न बढ़ाये या उसे न पहचान कर कम पुरुषार्थ करे और उसी में सन्तोष कर ले । यह सामाजिक व आर्थिक उन्नति में बाधक नहीं है । इसका पालन

करने से सामाजिक व आर्थिक उन्नति तो होती ही है इसके साथ-2 जीवन में निराशा नहीं आती ।

आजकल हमारी दृष्टि अधिकतर फल पर जाती है अपनी योग्यता व साधनों पर नहीं । यहीं से असन्तोष की भावना का जन्म होता है और यह जीवन को दुखमय बनाता चला जाता है । इसका एक ही उपाय है - अपने विचारों को शुद्ध करें, नियन्त्रण में रखें और ठीक दिशा में परिश्रम करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करें । इसलिए हमें अपने परिवार में, माता-पिता में, अपनी पत्नी में, जो भी भोजन मिले उसमें तथा जो भी हमारे पास धन साधन है, उसमें सदा सन्तोष रखना चाहिए ।

सन्तोष का पालन करने से मन शान्त व प्रसन्न रहता है । सुख की अनुभूति होती है, आत्म विश्वास बढ़ता है, अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । अत्यधिक विषय भोगों को भोगने की इच्छा धीरे-2 नष्ट होने लगती है ।

(3) तप :

धर्म तथा न्याय का पालन और शुभकार्य करते हुए, लाभ हानि, सुख-दुःख, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान आदि द्वन्द्वों को प्रसन्नता से सहना तप है । जो मनुष्य सुख में अहंकार नहीं करता और दुःख में घबराता नहीं, वही तपस्वी है ।

तप को तीन भागों में बांटा जा सकता है:-

(1) **शरीर का तप :** अपनी इन्द्रियों को वश/संयम में रखना व उनका ठीक-2 उपयोग करना शरीर का तप है । इसके अतिरिक्त माता-पिता, गुरुओं, विद्वानों, निर्धन व कमजोर की सेवा करना भी शरीर का तप कहलाता है ।

(2) **वाणी का तप :** सत्य बोलना, मीठा बोलना, उपयुक्त व कम बोलना, मर्यादा में बोलना आदि वाणी के तप के अन्तर्गत आता है ।

(3) **मन का तप :** मन सभी इन्द्रियों का राजा है । सभी इन्द्रियां मन के आदेशानुसार कार्य करती है । इसलिए मन के तप के बिना शरीर व वाणी का तप नहीं हो सकता । अपने मन को निर्मल, एकाग्र करने के

साथ-2 बुद्धि को सुबुद्धि बनाना मन का तप कहलाता है । इसमें प्राणायाम व योग बहुत सहायक होते हैं ।

हमारे अन्दर पवित्रता तप के बिना नहीं आ सकती । हमें मन में अपवित्र विचार नहीं आने देने चाहिये, सत्य का आचरण करना चाहिए । छल, कपट, क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, मोह का त्याग व बड़ों की सेवा व आदर सत्कार करना चाहिए ।

तप के बिना मन व चित्त की वृत्तियों को दूर करना व इन्द्रियों पर संयम रखना असंभव है ।

ईश्वर भक्ति में सफलता के लिए हमें अपनी सभी क्रियायों में यथा संभव तप का पालन और त्याग की भावना उत्पन्न करनी चाहिए ।

योग्यता व उपलब्धता के अनुसार साधनों का हम प्रयोग करें । लेकिन इनके अभाव में भी प्रसन्नता से रहना आना चाहिए । भौतिक पदार्थों की कमी के कारण सीमित संसारिक सुख होते हुए भी परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना, ध्यान से हमें अपने आप को वंचित नहीं करना चाहिए। महर्षि दयानन्द के अनुसार हमें थोड़ा थोड़ा दुःख, थोड़ा-2 कष्ट, थोड़ी-2 पीड़ा सहन करते रहना चाहिए ताकि योगाभ्यास में सफलता प्राप्त हो सके।

तप का पालन करने से शारीरिक, मानसिक व आत्मिक उन्नति होती है । हमारा शरीर वलवान हो जाता है । इन्द्रियां और मन वश में हो जाते हैं । बड़ी-2 समस्याओं के सुलझाने में प्रेरणा और ध्यान में सफलता मिलती है ।

(4) स्वाध्याय :

आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन, चिन्तन, मनन व ईश्वर के मुख्य नाम "ओ३म्" का जप करना स्वाध्याय कहलाता है ।

जीवन में पूर्ण सफलता, मन की शान्ति व मोक्ष की प्राप्ति के लिए हमें भौतिक विद्या व अध्यात्मिक विद्या - दोनों का ही अध्ययन करना चाहिए । दोनों में समन्वय बनाकर जीवन में आगे बढ़ना चाहिए । भौतिक शास्त्र / विद्या के बिना हम संसार में मिलने वाले भौतिक सुखों से वंचित

रहेंगे । अध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में आत्मा व परमात्मा की अनुभूति नहीं हो सकती । अतः जीवन को सुखी, शान्त, प्रसन्न, तृप्त व आनन्दमयी बनाने के लिए दोनों विद्यायों का अध्ययन, चिन्तन, मनन करना चाहिए । भौतिक व अध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति में समन्वय बनाकर चलना चाहिए ।

व्यवहार काल में कुछ समय निकाल कर हमें आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन के द्वारा ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव, ईश्वर प्राप्ति के उपाय व उसमें आने वाली बाधाओं के निवारण का चिन्तन करते रहना चाहिए ताकि ध्यान के समय केवल वे ही बातें सामने आयें अन्य नहीं । इसके साथ-2 हमें उपासना काल में ईश्वर के निज नाम "ओ३म्" का जप, गायत्री मंत्र का जाप व अन्य वैदिक मन्त्रों का जप अर्थ के साथ करना चाहिए । जप करते समय प्राणायाम, श्वास, प्रश्वास क्रियायें व धारणा का भी यथा संभव प्रयोग करना चाहिए । ऐसा करने से ध्यान में मन लगता है ।

स्वाध्याय करने से ज्ञान की वृद्धि के साथ-2 ईश्वर के प्रति श्रद्धा व रुचि बढ़ती है । मन व चित्त की वृत्तियों पर संयम होने लगता है । हम तरह-तरह के दुःखों से बचते हैं और लाभकारी वस्तुओं के उपभोग से सुख प्राप्त करते हैं ।

(5) ईश्वर प्रणिधान :

जब हम अपना प्रत्येक कार्य/कर्म यह जानते हुए करते हैं कि ईश्वर मुझे देख रहा है, सुन रहा है, जान रहा है, यह कार्य उसकी उपस्थिति में हो रहा है, तो ऐसी मानसिक स्थिति को ईश्वर प्रणिधान कहते हैं ।

हमें अपने सभी कार्य ईश्वर की व्यापकता को मन, बुद्धि व आत्मा में रखते हुए करने चाहिए ताकि हम ईश्वर के साथ अपना संबंध जोड़ सकें और गलत कार्य न कर सकें ।

ईश्वर प्रणिधान का दूसरा अर्थ है ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना । अपने तन, मन, धन को सदैव ईश्वर के प्रति समर्पित करते रहना अर्थात् उसकी आज्ञानुसार, निर्देशानुसार उनका सदुपयोग करना ।

ईश्वर प्रणिधान का पालन करने से हम पाप कर्म से बचते हैं । हमें प्रत्येक आत्मा व जड़ वस्तु में ईश्वर का आभास होता है । हमारा मन ध्यान में लगता है ।

तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान की साधना से हमारे तीनों शरीरों - स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर की शुद्धि होती है । तप से शरीर व इन्द्रियों की शुद्धि होती है । स्वाध्याय से मन, व बुद्धि की शुद्धि होती है । ईश्वर प्रणिधान से चित्त की शुद्धि होती है । **इन तीनों की साधना को क्रिया योग भी कहते हैं ।**

योग का तीसरा अंग-आसन

आजकल आसन के नाम पर अनेक योग क्रियायें समाज में चल रही हैं । इनको हम दो भागों में बांट सकते हैं ।

(1) **शारीरिक व मानसिक दृष्टि से लाभदायक**

शरीर को स्वस्थ व निरोग रखने के लिए हठयोग में विभिन्न प्रकार के आसन बताये गये हैं । इन आसनों को करने से शरीर का प्रत्येक अंग सक्रिय व स्वस्थ बना रहता है । यह आसन किसी योगाचार्य के मार्गदर्शन में ही सीखने चाहियें ।

(2) **अध्यात्मिक दृष्टि के लिए उपयोगी**

यह आसन ध्यान या समाधि में बैठने के लिए उपयोगी होते हैं । यह आसन महर्षि पतञ्जलि द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं । इनका मुख्य उद्देश्य ध्यान व समाधि में सफलता प्राप्त करना है । इसके लिए हम जिस स्थिति में सुखपूर्वक व स्थिरता के साथ बैठ जायें, उसे आसन कहते हैं। वैसे तो हम शरीर की स्थिरता बनाते हुये किसी भी आसन में ध्यान के समय बैठ सकते हैं लेकिन पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन व स्वस्तिकासन अधिक उपयुक्त हैं । **जो साधक रोग ग्रस्त होने के कारण इनमें से किसी एक भी आसन में नहीं बैठ सकते, वे लकड़ी की चौकी या कुर्सी पर बैठकर और / या दीवार आदि का सहारा लेकर प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास कर सकते हैं ।**

आसन में बैठते हुए शरीर को सीधा रखें, ढीला छोड़ें व गति रहित

रखें अर्थात् शरीर स्थिर अवस्था में रहे । कमर, छाती, गर्दन व सिर सीधी रेखा में रखें ताकि सुषम्ना नाड़ी सीधी रहे । यदि आवश्यकता हो तो कमर के पीछे एक तकिया लगाकर दीवार का सहारा लिया जा सकता है । धारणा, ध्यान व समाधि के लिए आसन का अभ्यास अति आवश्यक है । आसन की स्थिरता के बिना मन को एकाग्र करना और ध्यान में पूर्णतः लगाना असंभव है । आसन की सिद्धि हो जाने पर हमें गर्मी-सर्दी, भूख-प्यास आदि कम सताते हैं । चित्त में निम्न भावनायें प्रकट नहीं होती हैं । शरीर की स्थिरता से चित्त स्थिर होने लगता है । फलस्वरूप प्राण वायु भी स्थिर होने लगता है ।

आसन का अभ्यास कम आयु में ही शुरू कर देना चाहिए । पचास वर्ष के बाद आसन का अभ्यास करना कठिन हो जाता है। इस आयु में लातों की हड्डियां मोटी होती जाती हैं और पैरों को मोड़ने में कष्ट होता है ।

नोट—जो साधक किसी कारणवश कुर्सी, चौकी या दीवार आदि का सहारा लेकर भी प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकते, उनको किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है । ऐसे साध क शव आसन में लेटकर शरीर को पूर्ण रूप से ढीला छोड़ दें व शरीर को स्थिर कर लें । तत्पश्चात् प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास शुरू कर दें । कुछ ही दिनों के अभ्यास के बाद उनको भी प्राणायाम व ध्यान में सफलता मिलती जायेगी ।

योग का चौथा अंग-प्राणायाम

किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठकर मन की चंचलता को रोकने के लिए श्वास-प्रश्वास की जो क्रिया की जाती है उसे प्राणायाम कहते हैं । यह एक महत्वपूर्ण क्रिया है । इसका प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है । इसके साथ-2 हमारी इन्द्रियां, मन और चित्त की मलिनता और अशुद्धि भी दूर हो जाती हैं अतः शारीरिक, मानसिक व अध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए सभी को प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये ।

अध्यात्मिक उन्नति, ध्यान में सफलता व ईश्वर की अनुभूति श्वसन क्रियायों और प्राणायाम के अभ्यास के बिना असंभव है ।

योगदर्शन में केवल चार प्राणायामों का वर्णन है । यह बहुत आसान हैं । इनके करने की ठीक विधि किसी योगाचार्य से भी सीखी जा सकती है । इनका विवरण सूक्ष्म में इस प्रकार है ।

(1) बाह्य प्राणायाम :

इसे बाहरी कुम्भक या प्रथम प्राणायाम भी कहते हैं । इसमें प्राणवायु को धीरे-धीरे फेफड़ों से बाहर निकाला जाता है । पूर्ण प्राण वायु बाहर निकलने पर उसे यथा शक्ति बाहर ही रोकना चाहिए । जब प्राण वायु बाहर न रूक सके तो उसे धीरे-2 भीतर लें । फिर पुनः यही क्रिया करें । इस प्रकार इसे 3 से 21 बार कर सकते हैं । **यह क्रिया जप व ध्यान में बहुत सहायक होती है ।**

(2) आभ्यन्तर प्राणायाम :

इसे आन्तरिक कुम्भक या दूसरा प्राणायाम भी कहते हैं । इसमें श्वास को धीरे-2 अन्दर भरते हैं । श्वास को अन्दर भरकर यथाशक्ति रोकना चाहिए । जब श्वास अन्दर न रूक सके तब धीरे-2 श्वास को बाहर निकालना चाहिए । फिर पुनः यही क्रिया करें ।

नोटः-एक समय में केवल एक ही प्राणायाम करें- या तो बाह्य प्राणायाम करें या आभ्यन्तर प्राणायाम । एक प्रकार के प्राणायाम के अभ्यास के समाप्त होने पर दूसरा शुरू कर सकते हैं ।

(3) स्तम्भवृत्ति प्राणायाम :

बाह्य या आभ्यन्तर कुम्भक न करके प्राणवायु को अचानक ही जहाँ का तहाँ यथाशक्ति रोका जाता है । प्राणवायु न रूकने पर सूक्ष्म श्वास प्रश्वास की क्रिया की जाती है । उसके बाद पुनः स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति बनाई जाती है । यह क्रिया ध्यान में बहुत सहायक होती है ।

(4) बाह्य आभ्यान्तर विषयाक्षेपी प्राणायाम :

यह क्रिया बाह्य और आभ्यनतर प्राणायाम को मिलाकर की जाती

है । बाह्यकुम्भक के समय जब श्वास अन्दर आने लगे तो उसे धक्का देकर यथा शक्ति बाहर ही रोकना चाहिए । इसी प्रकार आभ्यन्तर कुम्भक में जब श्वास भीतर से बाहर निकलना चाहे तो उसे यथाशक्ति बाहर न निकलने देना और बाहर से और श्वास अन्दर लेना चाहिए । दोनों स्थितियों में श्वास को रोकने के बाद धीरे-2 छोड़ना चाहिये । **इसके अभ्यास से मन व इन्द्रियां संयम में होने लगती हैं ।**

प्राणायाम का अभ्यास शुरू करने से पहले प्रतिदिन सुबह दोनों नासिकाओं को साफ करना चाहिए । स्नान करने से पहले अंगुली से दोनों नासिकाओं में सरसों का तेल लगाना चाहिए । तत्पश्चात् प्रत्येक नासिका से धीरे-2 श्वास अन्दर ले ताकि कुछ तेल का अंश नासिका के द्वारा अन्दर चला जाये । इस प्रकार प्रतिदिन करने से नासिका में जमा मल मुलायम होकर धीरे-2 बाहर निकलता रहता है और नासिका साफ व मुलायम रहती है । सप्ताह में एक या दो बार दोनों नासिकाओं में बादाम रोगन की तीन-तीन बूंदें रात को सोते समय डालने से नासिकायें मुंलायम रहती हैं व सिर दर्द नहीं होता ।

प्राणायाम करने से पहले नाड़ी शुद्धि क्रिया (अलोम विलोम क्रिया) करनी चाहिए ताकि हमारे मेरूदण्ड के अन्दर की तीन आध्यात्मिक नाड़ियां-इडा, पिंगला और सुषम्ना सदा सक्रिय रहें ।

कपालभाति, भस्त्रिका, अनुलोम-विलोम नाड़ी शोधन आदि प्राणायाम हठ योग के अन्तर्गत आते हैं । ये शारीरिक स्वास्थ्य के लिए ठीक विधि से करने पर लाभदायक होती हैं । इनका वर्णन यहाँ पर नहीं किया जा रहा है ।

प्राणायाम में प्रयोग होने वाली क्रियाओं के नाम

(क) **पूरक :** प्राणायाम में श्वास के अन्दर लेने की क्रिया को पूरक कहते हैं ।

(ख) **रेचक :** श्वास को भीतर से बाहर निकालने की क्रिया को रेचक कहते हैं ।

(ग) **कुम्भक :** श्वास को अन्दर या बाहर रोकने की क्रिया को कुम्भक कहते हैं । शरीर और मन को स्थिर करने से ही कुम्भक का अभ्यास ठीक होता है ।

जप व ध्यान में सफलता प्राप्त करने के लिए उपरोक्त तीनों प्रकार की क्रियायों का अभ्यास पर्याप्त समय तक करना चाहिए । यह क्रियायें जप व ध्यान में बहुत सहायक होती हैं ।

श्वसन क्रियायें

श्वसन अर्थात् "श्वास लेना" की तीन महत्वपूर्ण क्रियायें या अवस्थायें हैं-दीर्घ, मध्यम और सूक्ष्म ।

(क) **दीर्घ श्वसन :** श्वास को धीरे-2 लम्बा व गहरा लेना और इसी प्रकार धीरे-2 छोड़ना, दीर्घ श्वसन कहलाता है । दीर्घ श्वसन (पूरक विधि) में श्वास को मन्द गति से लम्बा व गहरा अन्दर ले जाना होता है।

दीर्घ श्वसन (रेचक विधि) में श्वास को धीरे-2 मन्द गति से बाहर निकालना होता है ।

(ख) **मध्य श्वसन :** इसमें श्वास मध्यम गति से लिया जाता है अर्थात् बहुत धीमा नहीं-बहुत गहरा नहीं ।

(ग) **सूक्ष्म श्वसन :** इसमें श्वास की गति धीमी तो होती है लेकिन गहरी नहीं होती ।

उपरोक्त श्वसन क्रियायें प्राणवायु को शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचाने में सहायक होती हैं । इनमें मुख्य दीर्घ श्वसन क्रिया है । **इन क्रियायों के करने से शरीर स्वस्थ रहता है, शरीर के अनेक विकार दूर होते हैं, मानसिक एकाग्रता बढ़ती है, मन शान्त व संयम में हो जाता है। श्वसन क्रियायों और प्राणायाम के अभ्यास से मन जप व ध्यान में लग जाता है । सफलता मिलती है ।**

इसके अतिरिक्त दीघ्र श्वसन के अभ्यास से स्मृति शक्ति तथा मन की एकाग्रता बढ़ती है, ज्ञान की वृद्धि होती है, नाड़ी तन्त्र सुव्यवस्थित होता है, फेफड़े शक्तिशाली होते हैं, इन्द्रियों पर संयम होता है, ब्रह्मचर्य पालन में सहायता मिलती है और स्वास्थ्य अच्छा होता है ।

श्वसन क्रियायें हानिरहित हैं । इन्हें कोई भी व्यक्ति कुछ ही दिनों के अभ्यास से सीख सकता है । अपने शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-2 अध्यात्मिक लाभ भी उठा सकता है ।

नोट : बूढ़े व निर्बल/कमजोर व्यक्ति बहुत अधिक गहरा श्वास न लें। इसके अतिरिक्त शीत ऋतु में भी सभी को खुले वातावरण में अधिक गहरा श्वास नहीं लेना चाहिये । इससे ठण्ड लगने की सम्भावना हो सकती है ।

प्रस्तुत ध्यान विधि में श्वास प्रश्वास व प्राणायाम का प्रयोग किया गया है । अत: साधक इन क्रियायों का पर्याप्त अभ्यास कर लें ।

प्राणायाम व श्वसन क्रियायें करते समय सावधानियां

1. प्राणायाम और श्वसन क्रियाओं के करने का ठीक समय प्रात: काल है ।
2. ये खाली पेट होने पर या खाना खाने के 4 या 5 घंटे बाद ही करें ।
3. यदि भोजन न पचा हो या मल त्याग न हुआ हो तो प्राणायाम/श्वसन क्रियायें न करना अच्छा है ।
4. प्राणायाम व श्वसन क्रियायें शुद्ध व खुले स्थान जहाँ पर शुद्ध वायु हो, वहीं पर बैठकर करना चाहिए । बहुत सर्दी के मौसम में खुले स्थान पर बैठने से बचें ।
5. प्राणायाम व श्वसन क्रियाओं की मात्रा मौसम / ऋतु के अनुसार अपनी सामर्थ्य, आयु व स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर तय करनी चाहिए । अधिक सर्दी में बहुत गहरा लम्बा श्वास न लें । ठंड लग सकती है । हृदय रोग व उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति प्राणायाम व श्वसन क्रियाओं की मात्रा निश्चित करते समय अपने डाक्टर से सलाह ले लें ।
6. प्राणायाम, श्वसन क्रियाओं की मात्रा, संख्या पर ध्यान न देकर, उसकी विधि और कुशलता पर ध्यान देना चाहिए ।
7. प्राणायाम, श्वसन क्रियाओं को करने वाले का भोजन शाकाहारी व सात्विक होना चाहिए ताकि पूर्ण लाभ मिल सके ।

8. प्राणायाम, श्वसन क्रियायें करते समय यदि सिर भारी हो जाये, सिर दर्द होने लगे या चक्कर आने लगे या कोई अन्य शारीरिक परेशानी हो तो ये क्रियायें न करें और किसी निपुण योगाचार्य की सलाह लें ।
9. प्राणायाम व श्वसन क्रियाओं की संख्या शीत ऋतु में अधिक हो सकती है । ग्रीष्म ऋतु में कम होनी चाहिए । वर्षा ऋतु में न अधिक न कम ।
10. प्राणायाम, विशेष रूप से हठ योग के अन्तर्गत वाले प्राणायाम, अच्छे शिक्षक से सीख कर ही शुरू करना चाहिए, नहीं तो हानि भी हो सकती है ।
11. प्राणायाम व श्वास प्रश्वास क्रिया द्वारा ओ३म् का जाप व ध्यान करने से मन की चंचलता को रोकने में सहायता मिलती है । आत्मा के ऊपर जो अज्ञान का आवरण है वह धीरे-2 नष्ट होता जाता है ।

योग का पांचवा अंग-प्रत्याहार

प्रत्याहार का अर्थ है-अपनी इन्द्रियों को संयम में रखना, मन पर नियन्त्रण रखना । मन को वश में करने से सभी इन्द्रियां स्वयं वश में हो जाती हैं । इसके लिए संकल्प और तप की आवश्यकता है । त्याग की भावना अपने अन्दर उत्पन्न करनी होती है । त्याग की भावना व तपस्या का निरन्तर अभ्यास इन्द्रियों को जीतने में सफलता प्रदान करता है । जब तक व्यक्ति विषय भोगों में सुख समझता रहता है तब तक प्रत्याहार की सिद्धि होना असंभव है ।

प्रत्याहार का पालन करने से इन्द्रियां विषय भोगों में नहीं फंसती, ध्यान में एकाग्रता बढ़ती है और मनुष्य आत्म दर्शन का अधिकारी बनता है ।

योग का षष्ठ अंग-धारणा

धारणा का अर्थ चित्त को एक स्थान में रखना है अर्थात् चित्त में एक ही विषय का चिन्तन करना । प्रारम्भ में ध्यान करते समय मन को मस्तक, भ्रूमध्य, नासिका का अग्र भाग, जीभ का अग्र भाग या हृदय पर

केन्द्रित करना चाहिए ।

कुछ समय के लिए ओ३म् व गायत्री मंत्र आदि में भी धारणा करनी चाहिए । इसके बाद शरीर के अन्दर धारणा करनी चाहिए । वास्तव में धारणा करने का विधान शरीर के अन्दर ही है । ध्यान वहीं पर किया जाता है ।

आत्मा और परमात्मा दोनों ही हमारे शरीर में विद्यमान हैं । अत: ध्यान व धारणा शरीर के बाहर नहीं किये जा सकते । हमें चाहिए कि जितने धारणा स्थल हैं सभी पर धारणा लगाने का प्रयत्न करें । जिस स्थान पर मन टिक जाये उसे ही धारणा का केन्द्र बिन्दु बना लें ।

धारणा में सफलता के लिए यम नियम का पालन, आसन की सिद्धि, प्राणायाम का अभ्यास और इन्द्रियों पर संयम रखना अति आवश्यक है ।

धारणा से मन एकाग्र, प्रसन्न, व शान्त रहता है । ईश्वरीय ध्यान शीघ्र नहीं टूटता । टूटने पर पुन: शीघ्रता से लग जाता है । धारणा न होने से ध्यान नहीं होता है ।

योग का सातवां अंग-ध्यान

ध्यान हमारे जीवन का सबसे उत्तम कार्य है । इसे जितनी अच्छी विधि व शान्ति से किया जाय, उतना ही लाभकारी है । ध्यान में सफलता व्यक्तिगत अभ्यास व शुद्ध आचरण पर निर्भर करती है । अभ्यास के बिना किसी भी कार्य में सफलता नहीं मिलती । अत: हमें ध्यान में सफलता के लिए निरन्तर अभ्यास व प्रयास करते रहना चाहिए । ध्यान में असफलता का कारण अविद्या, नियमित अभ्यास न करना या शुद्ध आचरण का पालन न करना ही होता है ।

शरीर के अन्दर मन को धारणा स्थल पर टिका कर ईश्वर के दर्शन, अनुभूति व गुण, कर्म, स्वभाव आदि का लगातार चिन्तन मनन करना ध्यान कहलाता है ध्यान में चित्त की चंचलता बिल्कुल नहीं रहती है । चित्त पूर्णतय: स्थिर हो जाता है । यह चित्त की सर्वश्रेष्ठ स्थिर अवस्था है । जिस प्रकार जल में डुबकी लगाकर मनुष्य कुछ समय के लिए पानी के भीतर ही रुका रहता है इसी प्रकार ध्यान में जीवात्मा परमेश्वर के बीच कुछ समय के लिए आनन्दस्वरूप ज्ञान में मग्न होकर

फिर बाहर आ जाता है । इसका अर्थ मस्तिष्क को विचार शून्य करना नहीं है । ध्यान में सफलता के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार व धारणा का अभ्यास अति आवश्यक है ।

ध्यान का अभ्यास करने व ध्यान में बैठने से मन प्रसन्न व शान्त होता है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, अहंकार से छुटकारा मिलता है। बुद्धि की एकाग्रता बढ़ती है, नाड़ी तन्त्र व्यवस्थित रहता है । सभी प्रकार के मानसिक रोगों को समाप्त करने में राम बाण का कार्य करता है । शारीरिक रोगों को समाप्त करने में भी ध्यान प्रक्रिया कुछ सीमा तक सहायक होती है । टेंशन, डिप्रेशन, हृदयरोग आदि नहीं होते हैं । जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण का विकास होता है । प्रभु दर्शन का मार्ग खुल जाता है ।

ध्यानावस्था व अनुभूतियाँ

ध्यान का पूर्ण अभ्यास होने पर ध्यानकर्ता स्वयं को संसारिक दु:खों से मुक्त महसूस करता है । संसारिक व्यक्तियों को दु:खों से परिपूर्ण देखता है । वह इन्द्रियों के विषय भोगों में सुख के साथ जो दु:ख मिश्रित है उसे ठीक प्रकार से जान लेता है । इसके विपरीत संसारिक व्यक्ति यह तथ्य नहीं जान पाता है ।

बाहरी कुम्भक व स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में जब साधक पूर्ण ध्यानावस्था में होता है तो वह ईश्वर आनन्द का अनुभव करता है। इस आनन्द का अनुभव करने के बाद अब कोई अन्य पदार्थ प्राप्त करने की उसमें इच्छा नहीं रहती है । इस स्थिति / क्षण में योगी को अपना शरीर फूल की तरह हल्का व कोमल महसूस होता है । योगी जान लेता है कि अब मैंने अविद्या, कुसंस्कार, अधर्माचरण, अनुचित उपासना आदि अगला जन्म देने वाले कारणों को समझ लिया है। वह उनको धीरे-धीरे क्षीण करता चला जाता है और मोक्ष का अधिकारी होने का प्रयत्न करता रहता है ताकि जन्म जन्मान्तर के चक्र से मुक्ति मिल सके ।

निरन्तर व नियमित ध्यान में बैठने से समाधि (योग का आठवां अंग) की प्राप्ति होती है।

भाग – 3

जप व ध्यान

जप-ध्यान-सन्ध्या की पूर्व तैयारी

1. स्थान शान्त, एकान्त, स्वच्छ व हवादार होना चाहिए । नगरों में आजकल बहुमंजली इमारतें बनती जा रही है जो कि शुद्ध वायु का सेवन करने में अड़चन पैदा करती हैं । ऐसी परिस्थिति में मौसम / ऋतु का ध्यान रखते हुए, यदि मकान की छत पर जाकर जप, सन्ध्या व ध्यान किया जाय तो अधिक लाभ होता है ।
2. शौच, मंजन, व्यायाम व स्नान आदि के बाद स्वच्छ, ढीले व ऋतु के अनुसार ढीले वस्त्र, जप व ध्यान के समय पहनने चाहिए।
3. शौच, मंजन व हाथ मुंह धोने के बाद भी (स्नान से पहले) जप, सन्ध्या, ध्यान किया जा सकता है ।
4. जप, सन्ध्या व ध्यान में मन लगने के लिए **व्यवहार काल** में ईश्वर प्रणिधान का पालन करना चाहिए ।
5. टेलीफोन व दरबाजे की घंटी, रसोई की आवाज व घर के अन्य शोर से बचना चाहिए ।
6. प्रात:काल सूर्योदय से कम से कम 1-2 घंटे पहले उठ जाना चाहिए। जप, ध्यान, सन्ध्या की प्रक्रिया सूर्योदय से पहले पूर्ण करने का प्रयत्न करें ।
7. (a) सात्विक आहार का पालन करें व रात्रि के समय भोजन कम से कम करें ।
   (b) जप व ध्यान में बैठने के 3 घं० पूर्व खाना आदि न खायें। चाय या दूध (कम मात्रा में) ले सकते हैं । लेकिन वह भी साधना में बैठने के 1 घं० पहले ।

   (c) यदि खाना खाने के बाद जप या ध्यान के लिए बैठना हो, तो श्वास प्रश्वास व प्राणायाम क्रियायों का प्रयोग न करें ।
8. प्रतिदिन संकल्प करें कि ईश्वर साक्षात्कार व अनुभूति मेरा लक्ष्य है । मैं ईश्वर का ही ध्यान करूंगा ।
9. उपासना में बैठने से पूर्व चिन्तन करें कि सभी संबंधी, मित्र आदि स्वतन्त्र आत्मायें हैं और अपने-2 कर्मफल के अनुसार इस संसार में उन्होंने जन्म लिया है । इनसे मेरा कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है ।
10. उपासना में बैठते समय शरीर, आत्मा, ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का चिन्तन करें । अनुभव करें कि ईश्वर मेरे सामने विद्यमान है।

जप व जप सम्बन्धित ध्यान रखने योग्य बातें :

1. किसी मन्त्र या शब्द के बार-2 उच्चारण करने को जप कहते हैं । मन्त्र जप के अभ्यास करने से रजोगुण का प्रभाव कम होता जाता है ˙ सत्वगुण की मात्रा बढ़ती जाती है । जप करते-2 ध्यान लगने लगता है । मन, चित्त व बुद्धि की मलिनता धीरे-2 दूर होने लगती है । चित्त निर्मल व शुद्ध हो जाता है ।
2. **जप में सफलता के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–**

(क) मन्त्र या शब्द का सही / ठीक उच्चारण करना ।
(ख) मन्त्र या शब्द के अर्थ को जानना ।
(ग) अर्थ के अनुरूप विचार करना या भावना बनाये रखना ।
(घ) मन्त्र में दिये गये निर्देश के पालन हेतु यथा संभव कर्म करना व मन्त्र की भावना को आचरण में लाना ।
(ङ) श्वास प्रश्वास की क्रियाओं का मन्त्र उच्चारण करते समय उपयोग करना ।

(च) दोनों नासिकाओं को साफ रखना ताकि श्वास प्रश्वास सुगमता से हो सके ।

3. जप चार प्रकार से किया जा सकता है ।

(i) **वाचिक जप :** जब हम किसी मन्त्र या शब्द का उच्चारण ऊंचे व दीर्घ स्वर में करते हैं तो उसे वाचिक जप कहते हैं।

(ii) **उपांशु जप :** जब हम किसी मन्त्र या शब्द का उच्चारण बिना ध्वनि के (केवल होठ हिलाकर) दीर्घ स्वर में करते हैं तो उसे उपांशु जप कहते हैं ।

(iii) **मानसिक जप :** जब हम किसी मन्त्र या शब्द का उच्चारण केवल मन से (बिना होठ हिलाये) करते हैं तो उसे मानसिक जप कहते हैं ।

(iv) **अजपा जप :** पर्याप्त अभ्यास होने पर जब मानसिक जप उपासना काल व व्यवहार काल में स्वयं होने लगता है तो उसे अजपा जप कहते हैं ।

4. वाचिक जप के पर्याप्त अभ्यास के बाद उपांशु जप, इसके पूर्ण अभ्यास के बाद मानसिक जप व अन्त में अजपा जप का अभ्यास करना चाहिए ।

5. अजपा जप तक पहुँचने में लगभग एक वर्ष लग जाता है ।

6. सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द द्वारा बताये गये ईश्वर के किसी भी नाम का जप ध्यान से पहले करना चाहिये । ध्यान में शीघ्र सफलता मिलती है ।

7. जिन मन्त्रों या शब्दों से ईश्वर का शुद्ध स्वरूप हमारे सामने उपस्थित होता है, उन्हीं मन्त्रों या शब्दों का जप करना चाहिए। उदाहरण के लिए-(1) ओ३म् का जप (2) गायत्री मन्त्र का जप (3) प्राणायाम मन्त्र का जप (4) ओ३म् असतो मा सद्गमय का जप (5) ओ३म् विश्वानि देव-----आदि ।

8. ओ३म् जप ही श्रेष्ठ जप है । इसके जप में शारीरिक चंचलता बिल्कुल नहीं होती । शरीर स्थिर होने लगता है और

ध्यान की स्थिति शीघ्र आने लगती है । **इसी कारण प्रस्तुत पुस्तक में ध्यान विधि के अन्तर्गत ओ३म् के जप, उच्चारण पर विशेष ध्यान दिया गया है ।**

9. जप के समय व स्थान का नियमित पालन करें ।

10. यदि आप जल्दी में हैं या अन्य किसी कार्य में मानसिक रूप से व्यस्त हैं तो जप न करें । **ड्राईविंग करते समय मानसिक जप भी कभी न करें, दुर्घटना हो सकती है ।**

11. जप करने से पहले सुनिश्चित कर लें कि जब तक (नियमित निर्धारित समय तक) जप करना है उस समय किसी प्रकार की कोई न तो जल्दी है और न ही अन्य कोई कार्य तुरन्त करने के लिए आपकी प्रतीक्षा कर रहा है । यदि ऐसा है तो पहले उसको पूर्ण कर लीजिए ।

12. शरीर, सिर, गर्दन, छाती, कमर सीधी रखें । शरीर सीधा परन्तु ढीला रहे ।

13. मन में भावना रखें कि जप से मुझे सुख, शान्ति, प्रसन्नता व आनन्द मिलता है ।

14. आसन पर बैठने का गद्दा 1 से 1½'' मोटा होना चाहिए ।

जप व ध्यान मुद्रायें :

हाथों को जप के समय घुटनों या गोद में तीन प्रकार से रख सकते हैं-

(क) **द्रोंण मुद्रा में**-हाथ की उंगलियों को परस्पर मिलायें और हथेली के बीच गढ्ढा सा बनायें । हथेली कटोरा सा दिखाई देगी । अब दोनों हथेलियों को भूमि की ओर मोड़कर दोनों घुटनों के ऊपर रखें । कोहनियां कुछ मुड़ी हुई हों । हाथों को थोड़ा ढीला छोड़ दें ।

(ख) **ज्ञान मुद्रा में**-अंगूठे व तर्जनी उंगली के अग्र भाग को मिलाये । बाकी तीन अंगुलयों को मिलाकर सीधा रखें । मुद्रा बनाकर हथेलियों को आकाश की ओर करते हुए

घुटनों के ऊपर रखें ।

(ग) **पद्म मुद्रा में**-प्रत्येक हाथ की पांचों उंगलियों को आपस में मिलायें । दायें हाथ की हथेली को बायें हाथ की हथेली के ऊपर रखें । इसके पश्चात् दोनों हथेलियों को नाभि के नीचे गोद में रखें ।

16. जप, सन्ध्या व ध्यान के लिए सुखासन, सिद्ध आसन, पद्मासन या स्वस्तिकासन का प्रयोग करें ।

नोट–जो साधक किसी कारणवश उपरोक्त आसन में नहीं बैठ सकते या कुर्सी / चौकी / दीवार आदि का सहारा लेकर भी प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकते, उनको किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है । ऐसे साधक शव आसन में पतले गद्दे पर लेटकर शरीर को पूर्ण रूप से ढीला छोड़ दें व शरीर को स्थिर कर लें । तत्पश्चात् प्राणायाम व ध्यान का अभ्यास शुरू कर दें । कुछ ही दिनों के अभ्यास के बाद उनको भी प्राणायाम व ध्यान में सफलता मिलती चली जायेगी ।

"ओ३म्" शब्द व गायत्री मंत्र की जप विधि

ओ३म् व गायत्री मंत्र की जप विधि एवं ध्यान विधि लेखक अपने व्यक्तिगत अभ्यास और अनुभूति के आधार पर लिख रहा है । ओ३म् व गायत्री मंत्र के विधि अनुसार जप व अभ्यास से शरीर, मन व चित्त की चंचलता धीरे-धीरे खत्म होने लगती है । शरीर स्थिर होने लगता है और ध्यान की आंशिक स्थिति शीघ्र आने लगती है ।

"ओ३म्" शब्द की जप विधि

(1) धीमा (धीरे-2) लम्बा श्वास नासिका से अन्दर ले (पूरक क्रिया)

(2) ध्यान, मन को आज्ञाचक्र पर केन्द्रित करें ।

(3) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए "ओ३म्" का उच्चारण करें । (रेचक क्रिया)

ओ-----------------३-----------------म्

(4) ओ३म् का उच्चारण व श्वास बाहर निकलने की क्रिया एक साथ समाप्त होनी चाहिए । ओ३म् का उच्चारण समाप्त होते समय धीरे-2 मुख बन्द होता चला जायेगा **और अन्तिम अक्षर 'म' का उच्चारण नाक से तब तक करते रहें जब तक पूरा श्वास बाहर न चला जाये ।**

(5) श्वास बाहर निकलने के बाद श्वास को यथाशक्ति बाहर ही रोकें अर्थात् बाहरी कुम्भक की स्थिति में रहें ।

(6) बाहरी कुम्भक की स्थिति में "ओ३म्" शब्द के अर्थ का मानसिक चिन्तन करें-जैसे ईश्वर सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, धारक व प्रलयकर्ता है ।

नोट : यदि कुम्भक की स्थिति में रहने का अभ्यास अभी नहीं है तो एक या दो सूक्ष्म श्वास लें और पुनः कुम्भक की स्थिति में उपरोक्त मानसिक चिन्तन यथा शक्ति करें ।

(7) इस प्रकार यह एक चक्र पूरा हुआ ।

(8) इसी प्रकार पहले 11 चक्र का अभ्यास करें । धीरे-2 इसे बढ़ाते जायें । फिर 21, या 31 चक्र अपनी क्षमता, समय, योग्यता, स्वास्थ्य के अनुसार प्रतिदिन सुबह (ब्रह्म मुहुर्त में) व सांय काल सन्ध्या के समय करें ।

(9) इस विधि का प्रयोग तीनों प्रकार के जप - वाचिक, उपांशु व मानसिक-में किया जा सकता है ।

(10) श्वास प्रश्वास कितना लम्बा, कितना गहरा व कुम्भक का समय कितना हो-यह प्रत्येक साधक के शारीरिक स्वास्थ्य पर निर्भर करता है । अतः श्वास, प्रश्वास व कुम्भक की प्रक्रिया अपने स्वास्थ को ध्यान में रख कर करें । यदि कुम्भक करने में परेशानी हो तो सूक्ष्म श्वास ले सकते हैं।

(11) यदि लम्बा गहरा श्वास की प्रक्रिया में सिर भारी हो या शरीर में असुविधा का अनुभव हो रहा हो तो श्वास प्रश्वास

व कुम्भक की अवधि कम कर लेनी चाहिए ।

(12) जिन साधकों को उच्च रक्तचाप रहता है वे अधिक लम्बा, अधिक गहरा श्वास प्रारम्भ में न लें । अधिक देर तक कुम्भक की प्रक्रिया भी न करें । वे धीरे-2 अभ्यास से इस प्रक्रिया को बढ़ायें ।

उपरोक्त विधि से लाभ

1. दीर्घ व गहरा श्वास प्रश्वास की प्रक्रिया में विशेष प्रयत्न की जरूरत नहीं पड़ती । यह हानि रहित क्रिया है । इससे शरीर की सभी कोशिकायें सक्रिय (Active) हो जाती हैं ।
2. श्वसन तन्त्र सुव्यवस्थित होने लगता है ।
3. दीर्घ श्वसन की आदत डालने से सुक्ष्म नाड़ियां सक्रिय होती हैं । शुद्ध होती हैं । बलशाली होने लगती हैं ।
4. शारीरिक व मानसिक कार्यक्षमता और स्फूर्ति बढ़ती है ।
5. शरीर स्वस्थ व दीर्घ आयु को प्राप्त करता है ।
6. जप काल (उपासना काल) में रीढ़ की हड्डी व गर्दन सीधा रखने से रीढ़ व कमर संबंधी रोग नहीं होते हैं ।
7. मन की चंचलता पर नियन्त्रण लगता है । मन धीरे-2 शान्त होने लगता है ।
8. कुछ क्षण के लिए कुम्भक करने से शरीर में स्थिरता आती है जो कि ध्यान के लिए अति आवश्यक है ।
9. ईश्वर भक्ति में मन लगता है ।
10. दीर्घ श्वास प्रश्वास, जप व ध्यान की तरफ पहला सक्रिय कदम है ।

गायत्री मन्त्र की जप विधि

तैयारी : गायत्री मन्त्र का जप करने के लिए "ओ३म् जप तैयारी विधि " व "ध्यान रखने योग्य" बातों का पुनः चिन्तन करें ।

जप विधि

1. गायत्री मन्त्र को चार चरण में बांटा गया है

(1) **ओ३म् भूर्भवः स्वः** – पहला चरण
(2) **तत् सवितुर्वरेण्यम्** – दूसरा चरण
(3) **भर्गो देवस्य धीमहि** – तीसरा चरण
(4) **धियो यो न प्रचोदयात्** – चौथा चरण

2. गायत्री मन्त्र के अर्थ को अच्छी तरह कंठस्थ कर लें । साधकों की सुविधा के लिए सरल भाषा में भावार्थ निम्नलिखित है-

सरल भावार्थ : प्रभु आप प्राण स्वरूप, दुःख विनाशक, सुख स्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक व देवस्वरूप हैं ।

मैं आपके इस स्वरूप को अपने अन्तःकरण (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) में धारण करता हूँ। आप मेरी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें ।

कविता भावार्थ :

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू ।
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुखियों के कष्ट हरता है तू ।।
तेरा महान् तेज है, छाया हुआ सभी स्थान ।
सृष्टि की वस्तु वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान ।।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया ।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला ।।

3. मन में संकल्प करें कि उपरोक्त भावार्थ के अनुसार मैं प्रयास करके अपनी बुद्धि को सन्मार्ग पर लगाऊंगा ।

4. (क) ध्यान को मूलाधार या आज्ञाचक्र में ले जायें ।
(ख) धीरे-2 लम्बा गहरा श्वास नासिका से अन्दर लें (पूरक करें)
(ग) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए (रेचक विधि) गायत्री मन्त्र के पहले चरण का उच्चारण करें ।

ओ------------३------------म्--भूर्भवः स्वः

(घ) यथाशक्ति श्वास को बाहर ही रोकें (कुम्भक) । यदि कुम्भक की स्थिति में असुविधा हो तो एक या दो सूक्ष्म श्वास ले सकते हैं ।

(ङ) इस स्थिति (बाहरी कुम्भक) में प्रथम चरण का मानसिक उच्चारण जितनी बार सम्भव हो, करें ।

(च) तत्पश्चात् तीन सामान्य श्वास लें ।

5. (क) पुनः ध्यान को नाभि या आज्ञाचक्र पर ही केन्द्रित रखें।

(ख) धीरे-2 लम्बा गहरा श्वास नासिका से अन्दर लें (पूरक करें)

(ग) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए (रेचक क्रिया) गायत्री मन्त्र के दूसरे चरण का उच्चारण करें ।

ओ----------३----------म्--तत् सवितुर्वरेण्यम्

(घ) यथा शक्ति श्वास को बाहर ही रोकें (बाहरी कुम्भक) यदि कुम्भक की स्थिति में असुविधा हो तो सूक्ष्म श्वास ले सकते हैं ।

(ङ) इस स्थिति (बाहरी कुम्भक) में दूसरे चरण का मानसिक उच्चारण जितनी बार सम्भव हो, करें ।

(च) तत्पश्चात् तीन सामान्य श्वास लें ।

6. उपरोक्त विधि के अनुसार तीसरे व चौथे चरण का अभ्यास करें।

इस प्रकार यह एक चक्र पूरा हुआ । ऐसे तीन चक्र 2-3 मास तक प्रातः काल (ब्रह्म मुहुर्त) व सायं काल रोज करें । इसके अभ्यास के तुरन्त पश्चात् गायत्री मंत्र का पूर्ण उच्चारण निम्नलिखित विधि से शुरू करें व आध्यात्मिक लाभ प्राप्त करें ।

1. (क) ध्यान को आज्ञाचक्र, हृदय, नाभि या मूलाधार में मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्थिर करे । **कृपया ध्यान, धारणा का केन्द्र बार-2 न बदलें ।**

(ख) धीरे-2 लम्बा गहरा श्वास नासिका से अन्दर लें (पूरक)

(ग) श्वास धीरे-2 छोड़ते हुए (रेचक) पूर्ण गायत्री मन्त्र का

उच्चारण करें । कोशिश करें कि पूरा श्वास बाहर निकलने तक मन्त्र का उच्चारण चलता रहे ।

(घ) यथाशक्ति श्वास को बाहर ही रोकें (बाहरी कुम्भक) । इस स्थिति में मन्त्र का मानसिक उच्चारण करें या अर्थ का चिन्तन करें ।

(ङ) यदि कुम्भक की स्थिति में न रहा जाये तो एक या दो सूक्ष्म श्वास ले सकते हैं ।

इस प्रकार यह एक चक्र पूरा हुआ । इसी प्रकार से अधिक चक्र (जाप) 5, 11, या 21 अपनी क्षमता, समय, योग्यता, स्वास्थ्य के अनुसार प्रतिदिन सुबह-शाम नियमित समय पर करें ।

इस विधि का प्रयोग वाचिक, उपांशु या मानसिक-तीनों प्रकार के जप में किया जा सकता है ।

इस विधि की सावधानियां व लाभ हेतु "ओ३म् जप विधि" में दिये गये निर्देशों, बातों का अनुकरण करें ।

भाग – 4

उपासना व ध्यान

ध्यान विधि की तैयारी

जो तैयारी जप या सन्ध्या करने से पूर्व बतायी गई है उसी का अनुकरण करें ।

इसके अतिरिक्त ध्यान विधि में प्रयोग होने वाले निम्नलिखित शब्दों व मन्त्रों को अर्थ सहित याद कर लें ।

(1) ईश्वर के 20 मुख्य विशेषताएं (नाम) (गुण, कर्म, स्वभाव) निम्नलिखित क्रम में याद कर लें ।

(क) सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सृष्टिकर्ता

(ख) अजन्मा, अनादि, अनन्त, अनुपम, अमर, अजर, अभय

(ग) निराकार, न्यायकारी, निर्विकार, नित्य

(घ) दयालु, पवित्र

निम्नलिखित मन्त्र भी अर्थ के साथ याद कर लें ।

(2) प्राणायाम मंत्र :

ओ३म् भूः ओ३म् भूवः ओ३म् स्वः ओ३म् महाः ओ३म् जनः, ओ३म् तपः ओ३म् सत्यम् ।

अर्थ :

पहला चरण : ओ३म् भूः

प्रभू ! आप भूः स्वरूप हैं । प्राणदाता हैं । सभी के प्राणों की अन्न, जल, अग्नि व वायु द्वारा रक्षा करते हैं। मुझे भी प्रेरणा दीजिए। मैं भी यथाशक्ति दूसरों के प्राणों की रक्षा कर सकूं। अहिंसा के मार्ग पर चलूं।

दूसरा चरण : ओ३म् भुवः

प्रभु ! आप भुवः स्वरूप हैं । दुःख विनाशक हैं । सभी के दुःखों को न्यायपूर्वक दूर करते हैं । मुझे भी प्रेरणा दीजिए । मैं भी

यथाशक्ति दूसरों के संसारिक दुःखों को दूर कर सकूं ।

तीसरा चरण : ओ३म् स्वः

हे सर्वरक्षक प्रभु ! आप स्वः स्वरूप हैं । सुखदायक हैं । सभी प्राणियों को उनके कर्मानुसार सुख प्रदान करते हैं । मुझे भी प्रेरणा दीजिए–मैं भी यथाशक्ति दूसरों को सुख प्रदान कर सकूं । **उनके मानव अधिकारों की रक्षा कर सकूं ।** निर्मल, गरीब, दुःखी व रोगियों की सहायता कर सकूं ।

चौथा चरण : ओ३म् महः

हे प्रभो ! आप महः स्वरूप हैं । महान् हैं । श्रेष्ठ हैं । मुझे भी प्रेरणा दीजिए । मैं भी सुकर्म व निष्काम कार्य करता हुआ महानता के गुण अपने अन्दर ला सकूं ।

पांचवां चरण : ओ३म् जनः

हे प्रभु ! आप जनः स्वरूप हैं । सृष्टि के उत्पत्ति कर्ता हैं, पालक हैं, धारक हैं, प्रलयकर्ता हैं । आपको बार–2 नमन् करता हूँ ।

छटा चरण : ओ३म् तपः

हे प्रभु ! आप तपः स्वरूप हैं । सृष्टि में सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र, पृथ्वी आदि सभी आपके अनुसार नियम से कार्य कर रहे हैं । मुझे भी प्रेरणा दीजिए । मैं भी अपना जीवन तपस्वी बनाऊं । नियमित जीवन निर्वाह करूं ।

सातवां चरण : ओ३म् सत्यम्

हे प्रभु ! आप सत्य स्वरूप हैं । सत्यवादी है । मुझे भी प्रेरणा दीजिए । मैं भी सत्य के रास्ते पर चलूँ ।

(3) **ओ३म् असतो मा सद्गमय ।**
ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
ओ३म् मृर्त्योमा अमृतंगमय ।

अर्थ–

पहला चरण : ओ३म् असतो मा सदगमय

हे प्रभु ! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले जाइये । प्रेरणा दीजिए मैं सत्य का पालन करूं । छल, कपट व असत्य का त्याग करूं।

दूसरा चरण : ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय

हे प्रभु ! मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाइये । अविद्या से विद्या की ओर ले जाइये । अज्ञान से ज्ञान की ओर प्रेरित कीजिए। प्रेरणा दीजिए । मैं वेद और आर्ष ग्रन्थों का चिन्तन करूं । अष्टांग योग का पालन करूँ । उनके अनुसार अपना जीवन चलाऊं ।

तीसरा चरण : ओ३म् मृर्त्योमा अमृतंगमय ।

हे प्रभु ! मुझे मृत्यु रूपी दुःखों से छुड़ाकर मोक्ष रूपी आनन्द प्राप्त कराइये । मुझे प्रेरणा दीजिए । मैं सुकर्म व निष्काम कार्य करूं । योगाभ्यासी बनूं । आवागमन के चक्र से मुक्ति पाऊँ । आपका सच्चा पुत्र कहलाने का अधिकारी बनूं ।

(4) **गायत्री मंत्र**

गायत्री मंत्र व इसके अर्थ के लिए गायत्री मंत्र की जपविधि देखें ।

(5) **सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयः ।**
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःख भागभवेत् ।

अर्थ : हे ईश्वर ! सभी सुखी हों । कोई दुःखी न हों । सब नीरोग रहें । सब एक दसूरे को प्रेम भाव से देखें । सबका हर प्रकार से कल्याण हो ।

(6) **त्वमेव माता च पिता त्वमेव,**
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

हे ईश्वर ! तुम ही मेरी माता हो, पिता हो, मित्र हो, सखा हो, गुरु हो, आचार्य हो, राजा हो, उपास्य हो ।

प्रभु ! मुझे प्रेरणा दीजिए मेरा यह सम्बन्ध आपके साथ सदा बना रहे । मैं अपने सारे कार्य आपकी उपस्थिति मानकर करूं । मेरा मार्ग दर्शन कीजिए ।

(7) **हे ईश्वर दयानिधे ! भवत्कृपयाऽनेन जपोपासनादि कर्मणा । धर्मार्थ काममोक्षणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्न ।**

हे ईश्वर ! आपकी कृपा से मैं शीघ्र ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति करूं ।

(8) **ओ३म् नमः शम्भवाय च, मयोभवाय च, नमः शंकराय च, मयस्कराय च, नमः शिवाय च, शिवतराय च ॥**

हे प्रभु ! आप सुख प्रदाता हैं । हमारा कल्याण करने वाले हैं । मंगल स्वरूप हैं । आपको हमारा बारम्बार नमस्कार हो ।

(9) शान्ति पाठ

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति-रोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः ।
सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हे ईश्वर ! सूर्यादि, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, जल, ओषधियां, वनस्पतियां सभी शान्तिदायक हैं । हे प्रभु, अपनी कृपा से ऐसी शान्ति सभी को प्रदान कीजिए ।

ध्यान विधि :

इस पुस्तक में बताई गई ध्यान विधि के अनुसार ध्यान में लगभग आधे घण्टे से एक घण्टा लगता है । इस समय को अपने स्वास्थ्य, लगन, रुचि व समय के अनुसार बढ़ाया जा सकता है । ध्यान विधि में श्वास प्रश्वास क्रिया, बाह्य प्राणायाम (कुम्भक), स्तम्भवृत्ति प्राणायाम, ओ३म् का जाप तथा सरल वैदिक मन्त्रों का प्रयोग किया गया है । इनका अभ्यास व श्वास प्रश्वास क्रियाओं के साथ सही उच्चारण करने में काफी समय लगता है। लेकिन कोई भी साधारण साधक इनको कुछ ही दिनों में सफलतापूर्वक सीख सकता है । पूर्ण अभ्यास के बाद सफलता भी अवश्य मिलती है ।

साधकों व प्रभु भक्तों की सुविधा के लिए ध्यान प्रक्रिया को चार चरणों में बांटा गया है । प्रत्येक चरण – एक, दो, तीन और चार का अभ्यास कम से कम तीन–तीन महीने करना है । साधक प्रथम चरण का अभ्यास तीन महीने करने के बाद ही दूसरे चरण में प्रवेश करें । इसी

प्रकार दूसरे और तीसरे चरण का कम से कम तीन-तीन महीने अभ्यास होने पर चौथे चरण अर्थात् वास्तविक ध्यान में प्रवेश करें । इसके साथ-2 प्रतिदिन व्यवहार काल में अपनी दिनचर्या को ठीक रखें । यम, नियम व आसन का पालन करें ।

इस प्रकार ध्यान में सफलता के लिए कम से कम एक वर्ष लग जाता है । मुझे विश्वास है कि प्रभु आपको इस शुभ कार्य में पूर्ण सफलता प्रदान करेगा ।

ध्यान विधि के चार चरणों की निम्न विशेषताएं हैं ।

(1) **पहला चरण :** इस चरण में शब्दों और मन्त्रों का उच्चारण करते हुए केवल दीर्घ श्वसन व सुक्ष्म श्वसन प्रक्रिया का अभ्यास किया गया है । इस प्रक्रिया से मन शान्त होता है । ईश्वर भक्ति में मन लगता है । मन्त्र व शब्द कंठस्थ हो जाते हैं । दीर्घ श्वसन के अभ्यास से स्वास्थ्य अच्छा बना रहता है।

(2) **दूसरा चरण :** इस चरण में मन्त्रों का उच्चारण पहले चरण की भांति दीर्घ श्वसन प्रक्रिया के साथ किया जाता है । इसके अतिरिक्त मन्त्रों के अर्थ का भी उच्चारण किया जाता है । इसके लाभ भी पहले चरण की तरह हैं । मन्त्रों के अर्थ कण्ठस्थ हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त हमारा चित्त भी शान्त होने लगता है ।

(3) **तीसरा चरण :** इस चरण में मन्त्रों का उपांशुविधि द्वारा उच्चारण करते हैं । **दीर्घ श्वसन प्रक्रिया के साथ-2 बाह्य प्राणायाम (बाहरी कुम्भक) एवं स्तम्भवृत्ति प्राणायाम का भी प्रयोग किया गया है ।** इस चरण के अभ्यास के बाद शरीर में पूर्ण स्थिलता आ जाती है और मन व चित्त पूर्ण रूप से ईश्वर के ध्यान में लग जाते हैं ।

(4) **चौथा चरण :** इस चरण में सभी मन्त्रों का केवल मानसिक चिन्तन / उच्चारण ही किया जाता है । श्वास-प्रश्वास प्रक्रिया व प्राणायाम की सहायता पहले की तरह ली जाती है ।

इस स्थिति में ध्यान की पूर्ण विधि सम्पन्न होती है । हम

वास्तविक ध्यान में प्रवेश करते हैं ।

नोट : साधकों व भक्तों से निवेदन है कि वे सीधा तीसरे या चौथे चरण में प्रवेश करने का प्रयत्न न करें । ध्यान करना एक तप है । इसमें सफलता हमारे शुद्ध आचरण, विभिन्न क्रियाओं के निरन्तर अभ्यास, सुविचार और प्रभु कृपा के द्वारा ही मिलती है । इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए लेखक ने ध्यान सीखने हेतु साधकों के लिए कम से कम एक वर्ष का अनुमान लगाया है । फलस्वरूप ध्यान प्रक्रिया को चार भागों में बांट दिया गया है ताकि प्रभु भक्त ध्यान प्रक्रिया को आसानी से सीख सकें और ईश्वर के आनन्द को प्राप्त कर सकें ।

ध्यान विधि-पहला चरण-प्रातःकाल

1. (i) ध्यान की तैयारी से सम्बन्धित बातों का अनुकरण करते हुए किसी भी आसन में सुख पूर्वक बैठ जायें ।

   (ii) यदि शब्द, मन्त्र कंठस्थ हैं तो आंखें बन्द कर लें अन्यथा आंखें खोल कर रखें व मन्त्र, शब्द पढ़कर उच्चारण करें ।

   (iii) शब्द / मन्त्र का जप करते हुए दीर्घ श्वसन विधि का प्रयोग बताया गया है । यदि दीर्घ व गहरा श्वास लेने से शरीर या मस्तिष्क में कुछ असुविधा प्रतीत हो तो बहुत गहरा श्वास अन्दर न लें । उच्चरक्तचाप से पीड़ित साधक भी प्रारम्भ में अधिक गहरा श्वास अन्दर न लें । ऐसी स्थिति में श्वास कम गहरा लें । लेकिन श्वास को लम्बा करते हुए धीरे-2 मन्त्र के उच्चारण के साथ छोड़ें ताकि मन्त्र का उच्चारण व पूर्ण श्वास एक साथ बाहर निकले ।

2. (a) सर्व प्रथम तीन बार दीर्घ श्वसन प्रक्रिया करें ।

   (b) तत्पश्चात् गहरी श्वास अन्दर लेकर छोड़ते हुये गायत्री मंत्र का धीरे-2 उच्चारण करें ।

तत्पश्चात् पांच संकल्प निम्न प्रकार करें-

3. (क) दीर्घ श्वसन क्रिया के साथ ओ३म् का उच्चारण करें अर्थात्

पहले धीमा लम्बा गहरा श्वास अन्दर लें फिर धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए ओ३म् का उच्चारण करें । जब तक पूरा श्वास बाहर नहीं चला जाता, ओ३म् का उच्चारण चलता रहे ।

(ख) इसके पश्चात् दो या तीन सामान्य श्वास लें ।

(ग) तत्पश्चात् संकल्प लें-

संकल्प (i)

हे परमेश्वर ! आप मुझे देख रहे हैं । सुन रहे हैं । जान रहे हैं । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ । उपासना काल में अपना मन आपसे हटाकर इधर-उधर नहीं ले जाऊंगा । आपकी उपासना प्रतिदिन सुबह-शाम हृदय से करूँगा ।

(घ) तत्पश्चात् 2 या 3 बार सूक्ष्म श्वास लें ।

पुनः बिन्दु (क) में ऊपर दिये गये निर्देश के अनुसार ओ३म् का उच्चारण करें । इसके बाद 2-3 सामान्य श्वास लें । तत्पश्चात् संकल्प नं० 2 बोलें

संकल्प (ii)

हे प्रभु ! मैं एक आत्मा हूँ । अपने कर्मों के फलानुसार और आपकी कृपा से मुझे यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है । मैं संकल्प लेता हूँ । **मन, वचन व कर्म से कभी भी किसी भी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाऊंगा** । काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, अहंकार पर संयम रखूंगा ।

तत्पश्चात् 2 या 3 बार सूक्ष्म श्वास लें ।

इसी प्रकार ओ३म् का उच्चारण करने के बाद नीचे दिये तीन संकल्प और लें ।

संकल्प नं० (iii)

हे प्रभु ! मैं अपने जीवन में यम नियम का पालन करूँगा । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के साथ-साथ शुद्धि, सन्तोष, स्वाध्याय, तप, व ईश्वर प्रणिधान को अपने जीवन का अंग बनाऊंगा । अपने सभी कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करूंगा ।

संकल्प नं० (iv)

हे प्रभु ! मैं व्रत धारण करता हूँ । अपनी शक्ति व योग्यता के अनुसार निरन्तर पंच महायज्ञ का पालन करूंगा । अविद्या को दूर करूंगा ! विद्या की वृद्धि करूँगा । गरीब, कमजोर, रोगी व दुखियों की यथाशक्ति सहायता करूंगा ।

संकल्प (v)

हे प्रभु ! मुझे प्रेरणा दीजिए ! मैं न्यायकारी बनूं, सत्यमयी बनूं । दयालु बनूं, पवित्र बनूं, अहिंसक बनूं, निष्काम कर्म करूं । **कभी भी किसी के मानव अधिकारों का उल्लंघन न करूं** । जन्म जन्मान्तर के चक्र से मुक्ति पाऊँ ।

नोट : ***संकल्प में बहुत बड़ी प्रेरणा व शक्ति होती है । प्रतिदिन प्रातः और सायं संकल्प दोहराने और उसके अनुसार अपना आचरण करने से हमारे ऊपर प्रभु की कृपा होती है, सभी शुभ कार्य सफल होते हैं। प्रभु भक्ति में मन लगता है । इसके विपरीत जो प्रभु भक्त उपरोक्त पांच संकल्पों के अनुसार अपनी जीवनचर्या ठीक नहीं करते, उनको ध्यान में कब व कितनी सफलता मिलेगी, इसका निर्णय वे स्वयं कर सकते हैं ।***

ईश्वर स्तुति

(4) **प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुभव कराने वाले नामों का वाचिक उच्चारण, चिन्तन-मनन !**

(i) (क) लम्बा, गहरा, श्वास धीरे-2 अन्दर लें (पूरक करें) फिर श्वास को धीरे-2 बाहर छोड़ते हुए लम्बे स्वर में वाचिक उच्चारण करें-

“ओ३म् सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वराय नमो नमः”

(ख) वाक्य का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(ग) तत्पश्चात् तीन सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी एक दिये गये स्थान पर बनायें रखें या मन को मन्त्र पर ही केन्द्रित करें ।

(ड़) इस प्रकार यह ईश्वर के एक गुण का वाचिक उच्चारण हुआ ।

इसी उपरोक्त विधि से ईश्वर के अन्य गुण, कर्म, स्वभाव का वाचिक उच्चारण, चिन्तन मनन / अभ्यास करें ।

(ii) **ओ३म् सर्व शक्तिमान् परमेश्वराय नमो नमः**
(iii) **ओ३म् सर्वव्यापक परमेश्वराय नमो नमः**
(iv) **ओ३म् सर्वान्तर्यामी परमेश्वराय नमो नमः**
(v) **ओ३म् सर्वाधार परमेश्वर नमो नमः**
(vi) **ओ३म् सर्वेश्वर परमेश्वराय नमो नमः**
(vii) **ओ३म् सृष्टिकर्ता परमेश्वराय नमो नमः**
(viii) **ओ३म् अजन्मा परमेश्वराय नमो नमः**
(ix) **ओ३म् अनादि परमेश्वराय नमो नमः**
(x) **ओ३म् अनन्त परमेश्वराय नमो नमः**
(xi) **ओ३म् अनुपम परमेश्वराय नमो नमः**
(xii) **ओ३म् अमर परमेश्वराय नमो नमः**
(xiii) **ओ३म् अजर परमेश्वराय नमो नमः**
(xiv) **ओ३म् अभय परमेश्वराय नमो नमः**
(xv) **ओ३म् निराकार परमेश्वराय नमो नमः**
(xvi) **ओ३म् न्यायकारी परमेश्वराय नमो नमः**
(xvii) **ओ३म् निर्विकार परमेश्वराय नमो नमः**
(xviii) **ओ३म् नित्य परमेश्वराय नमो नमः**
(xix) **ओ३म् दयालु परमेश्वराय नमो नमः**
(xx) **ओ३म् पवित्र परमेश्वराय नमो नमः**

नोट : ***ईश्वर स्तुति का लाभ जब ही होता है जब हम उसमें बताये गये ईश्वर के गुणों को (जो संभव हों) अपने हृदय में धारण करते हैं और उन को अपने आचरण में पालन करते हैं ।***

(5) **प्राणायाम मन्त्र का वाचिक उच्चारण व चिन्तन**

(क) धीरे–2 लम्बा, गहरा श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे–2 श्वास छोड़ते हुए मंत्र के पहले चरण का उच्चारण करें–

(i) **ओ------------३------------म्---भूः**

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।
श्वास पूर्ण बाहर निकलने के पश्चात् (अर्थात् रेचक के बाद) तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी एक दिये गये स्थान पर बनाये रखें या मन को मन्त्र पर ही केन्द्रित करें ।

(ङ) इस प्रकार प्राणायाम मन्त्र के पहले चरण का वाचिक उच्चारण, चिन्तन हुआ ।

इसी प्रकार उपरोक्त विधि से प्राणायाम मन्त्र के अन्य छः चरणों का वाचिक उच्चारण, चिन्तन, अभ्यास करें ।

(ii) **ओ------------३------------म्---भुवः**
(iii) **ओ------------३------------म्---स्वः**
(iv) **ओ------------३------------म्---महः**
(v) **ओ------------३------------म्---जनः**
(vi) **ओ------------३------------म्---तपः**
(vii) **ओ------------३------------म्---सत्यम्**

इसके पश्चात् दीर्घ श्वास ले कर एक साथ पूर्ण मन्त्र का वाचिक उच्चारण उपरोक्त विधि से पुनः करें ।

ओ३म् भूः ओ३म् भूवः ओ३म् स्वः ओ३म् महाः ओ३म् जनः, ओ३म् तपः ओ३म् सत्यम् ।

ईश्वर प्रार्थना–

(6) **असतो मा सदगमय मन्त्र का वाचिक उच्चारण/चिन्तन**

(क) धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का उच्चारण करें ।

(i) **ओ--------३--------म् असतो मा सदगमय**

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिये । श्वास पूर्ण बाहर निकलने के पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी एक दिये गये स्थान पर बनाये रखें या मन को मन्त्र पर ही केन्द्रित रखें ।

(ड़) इस प्रकार इस मन्त्र का एक चरण पूर्ण हुआ ।
इसी प्रकार मन्त्र के अन्य दो चरणों (उपरोक्त विधि से) का वाचिक उच्चारण / चिन्तन करें ।

(ii) **ओ--------३--------म्- तमसो मा ज्योतिर्गमय**

(iii) **ओ--------३--------म्- मृर्त्योमा अमृतंगमय**

इसके बाद दीर्घ श्वास लेकर श्वास छोड़ते हुए पूर्ण मन्त्र का एक साथ वाचिक उच्चारण करें ।

ओ३म् असतो मा सद्गमय ।
तमसो मा ज्योतिर्गमय ।
मृर्त्योमा अमृतंगमय ।

(7) **गायत्री मन्त्र का उच्चारण / चिन्तन**

गायत्री मन्त्र का उच्चारण **गायत्री मन्त्र जप विधि** में विस्तार से दिया गया है । गायत्री मन्त्र के चारों चरणों का उच्चारण दीर्घ श्वास की प्रक्रिया द्वारा करें ।

(8) तत्पश्चात् **त्वमेव माता च पिता त्वमेव** का उच्चारण अर्थ सहित **सामान्य श्वास प्रक्रिया** से करें ।

नोट :–प्रार्थना के पश्चात् हाथ पर हाथ रखकर बैठना उचित नहीं है । इसके बाद हमें उचित व श्रेष्ठ पुरुषार्थ करना चाहिए । प्रार्थना के

उपरान्त जैसा व्यक्ति शुभ सोचता है, वेसा ही होने का वातावरण बनता जाता है और धीरे-2 पुरुषार्थ के द्वारा सभी मंगल कामनाओं में सफलता मिलती जाती है ।

(9) इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण, चिन्तन सामान्य श्वास के साथ करें । अर्थात् **दीर्घ श्वसन प्रक्रिया का प्रयोग न करें ।**

(i) सर्वे भवन्तु सुखिनः मन्त्र (सर्वमंगल कामना मन्त्र)

(ii) हे ईश्वर दयानिधे (समर्पणमन्त्र)

(iii) ओ३म् नमः शम्भवाय च (नमस्कार मन्त्र)

(iv) शान्ति पाठ

इसके बाद प्रभु का धन्यवाद करें । यदि थकावट हो गई हो तो पांच मिनट शव आसन में लेट जायें ।

सायंकाल के संकल्प :

सर्वप्रथम धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास लेकर ओ३म् का उच्चारण तीन बार करें । तत्पश्चात् बोलें–

हे प्रभु ! मैंने जो भी संकल्प प्रातः उपासना काल में किये थे उनको आज व्यवहार काल में पालन करने की कोशिश की है । प्रभु, मुझे प्रेरणा दीजिए मैं इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकूं ।

ध्यान विधि–दूसरा चरण

दूसरे चरण में शब्दों व मन्त्रों का वाचिक उच्चारण दीर्घ श्वसन प्रक्रिया के साथ पहले चरण की तरह ही करना है । इसके साथ-2 प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण के बाद उसके अर्थ का भी वाचिक उच्चारण, चिन्तन, मनन किया जाता है ।

दूसरे चरण की विधि निम्न प्रकार है ।

1. पहले चरण में दिये गये निर्देश, क्रिया व अभ्यास 1, 2, 3 का पालन करें / अनुकरण करें / दोहरायें ।

4. **प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुभव कराने वाले**

नामों का अर्थ सहित वाचिक उच्चारण, चिन्तन-मनन

4. (i) (क) लम्बा, गहरा, श्वास धीरे-2 अन्दर लें (पूरक करें)।

(ख) धीरे-2 श्वास बाहर छोड़ते हुए लम्बे स्वर में वाचिक उच्चारण करें–

"ओ३म् सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वराय नमो नमः"

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए । पूर्ण श्वास निकलने के बाद 2-3 सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) इसके पश्चात् सामान्य श्वास लेते हुए अर्थ का उच्चारण करें ।

प्रभु ! आप सर्वदा रहने वाले हैं । चेतन हैं । ज्ञानयुक्त हैं । आनन्द स्वरूप हैं ।

4. (ii) उपरोक्त विधि (4 (i) क, ख, ग, घ के अनुसार) बाकी नामों का वाचिक उच्चारण के साथ-साथ अर्थ का भी उच्चारण करें–

ओ३म् सर्वान्तर्यामी परमेश्वराय नमो नमः
प्रभु ! आप सभी जड़ और चेतन पदार्थों के अन्दर बाहर विद्यमान हैं ।

(iii) **ओ३म् सर्वव्यापक परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप सभी स्थान और तीनों लोकों में विद्यमान हैं।

(iv) **ओ३म् सर्वशक्तिमान परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप सृष्टि के रचयिता व पालनहार हैं । प्रलय कर्ता हैं । जीवों को कर्मानुसार फल देते हैं । इन कार्यों में किसी की सहायता नहीं लेते हैं ।

(v) **ओ३म् सर्वाधार परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, आकाश-गंगा, ग्रह, उपग्रह के निर्माणकर्ता हैं । आधार हैं ।

(vi) **ओ३म् सृष्टिकर्ता परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप सृष्टि के रचयिता हैं । पालन कर्ता हैं ।

प्रलयकर्ता हैं ।

(vii) **ओ३म् सर्वेश्वर परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! सृष्टि में सभी धन आपका है । सम्पत्ति आपकी है । ज्ञान आपका है । बल आपका है । ऐश्वर्य आपका है ।

(viii) **ओ३म् अजन्मा परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप जीवात्मा की तरह जन्म नहीं लेते हैं ।

(ix) **ओ३म् अनादि परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप उत्पत्ति शून्य हैं । सदा रहने वाले हैं ।

(x) **ओ३म् अनन्त परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप विशाल हैं । आपकी विशालता की कोई सीमा नहीं है ।

(xi) **ओ३म् अनुपम परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आपसे अच्छा कोई भी पदार्थ सृष्टि में नहीं है ।

(xii) **ओ३म् अमर परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप मृत्यु से परे हैं ।

(xiii) **ओ३म् अजर परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप जीव की तरह रोग ग्रस्त नहीं होते हैं । बूढ़े नहीं होते हैं ।

(xiv) **ओ३म् अभय परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप भय से रहित हैं ।

(xv) **ओ३म् न्यायकारी परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप जीवों को उनके कर्म के अनुसार फल देते हैं।

(xvi) **ओ३म् निर्विकार परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप जड़ पदार्थों के विकारों से रहित हैं । दोषों से परे हैं ।

(xvii) **ओ३म् निराकार परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आपकी कोई आकृति नहीं है । मूर्ति नहीं है । रंग रूप नहीं है ।

(xviii) **ओ३म् नित्य परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप भूतकाल, वर्तमानकाल व भविष्यकाल तीनों में विद्यमान हैं ।

(xix) **ओ३म् दयालु परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप जीवात्मा को प्रकाश, जल, वायु, अग्नि आदि सुख प्रदान करते हैं ।

(xx) **ओ३म् पवित्र परमेश्वराय नमो नमः**
प्रभु ! आप पाप-कर्म से परे हैं । अविद्या से परे हैं ।

5. **प्राणायाम मन्त्र के सातों चरणों का अर्थ सहित वाचिक उच्चारण / चिन्तन / मनन :–**

(i) (क) धीरे-2 लम्बा गहरा श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का उच्चारण करें।
ओ-------------३-------------म्---भूः

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

पूर्ण श्वास निकलने के बाद तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) इसके पश्चात् "ओ३म् भूः" के अर्थ का सामान्य श्वास लेते हुए उच्चारण करें ।

प्रभु ! आप भूः स्वरूप हैं । प्राणदाता हैं । सभी के प्राणों की अन्न, जल व वायु द्वारा रक्षा करते हैं । मुझे भी प्रेरणा दीजिए। मैं भी यथाशक्ति दूसरों के प्राणों की रक्षा कर सकूं । अहिंसा के मार्ग पर चलूं ।

(ङ) मन की धारणा किसी एक दिये स्थान पर बनाये रखें या मन को मन्त्र पर ही केन्द्रित रखें ।

इस प्रकार प्राणायाम मन्त्र के पहले चरण का उच्चारण अर्थ सहित पूर्ण हुआ।

इसी प्रकार उपरोक्त विधि से प्राणायाम मन्त्र के अन्य छः चरणों का वाचिक उच्चारण / अभ्यास अर्थ सहित करें ।

6. **"असतो मा सदगमय" मन्त्र के तीनों चरणों का अर्थ सहित वाचिक उच्चारण / चिन्तन / मनन**

(क) धीरे-2 लम्बा गहरा श्वास अन्दर लें । (पूरक)

(ख) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का वाचिक उच्चारण करें।
ओ-----------३-----------म् असतो मा सदगमयः

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

पूर्ण श्वास बाहर निकलने के बाद तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी एक दिये स्थान पर बनाये रखें या मन को मन्त्र पर ही केन्द्रित रखें ।

(ङ) इसके पश्चात् सामान्य श्वास लेते हुए मन्त्र के अर्थ का वाचिक उच्चारण करें ।

हे प्रभु ! मुझे असत्य से सत्य की ओर ले जाइये । प्रेरणा दीजिए । मैं सत्य का पालन करूं । छल, कपट व असत्य का त्याग करूं ।

इसी प्रकार उपरोक्त विधि से इस मन्त्र के शेष दो चरणों का अर्थ सहित उच्चारण करें ।

इसके बाद दीर्घ श्वास लेकर पूर्ण मन्त्र का एक साथ वाचिक उच्चारण करें ।

7. **गायत्री मन्त्र का अर्थ सहित उच्चारण**

गायत्री मन्त्र के चारों चरणों का उच्चारण दीर्घ श्वसन विधि से करने के बाद उसके अर्थ – सरल अर्थ व कविता अर्थ का उच्चारण करें ।

नोट : *उच्चारण / अभ्यास के लिए "जप विधि" देखें ।*

8. **त्वमेव माता च पिता त्वमेव** का उच्चारण अर्थ सहित सामान्य श्वास प्रक्रिया से करें ।

9. इसके पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण / चिन्तन सामान्य श्वास प्रक्रिया के साथ करें अर्थात् **दीर्घ श्वसन प्रक्रिया का प्रयोग न करें ।**

(क) सर्वे भवन्तु सुखिनः मंत्र

(ख) हे ईश्वर दयानिधे (समर्पण मंत्र)

(ग) ओ३म् नमः शम्भवाय चः (नमस्कार मन्त्र)

(घ) शान्ति पाठ

इसके बाद प्रभु का धन्यवाद करें । यदि थकावट हो गई हो तो पांच मिनट शव आसन में लेट जायें ।

सायंकाल के संकल्प :

सर्वप्रथम धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास लेकर ओ३म् का उच्चारण तीन बार करें । तत्पश्चात् बोलें–

हे प्रभु ! मैंने जो भी संकल्प प्रातः उपासना काल में किये थे उनको आज व्यवहार काल में पालन करने की कोशिश की है । प्रभु, मुझे प्रेरणा दीजिए । मैं इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकूं ।

प्रथम व द्वितीय चरण की समीक्षा

1. ध्यान विधि के प्रथम व द्वितीय चरण का तीन-तीन मास अभ्यास करने के बाद सभी मन्त्र साधक को कंठस्थ हो जाते हैं ।
2. साधक को सभी मन्त्रों के अर्थ याद हो जाते हैं ।
3. लम्बा, गहरा, धीमा श्वास लेने का पर्याप्त अभ्यास हो जाता है।
4. मन्त्र व उसके अर्थ का उच्चारण, चिन्तन, मनन उपांशु व मानसिक विधि द्वारा करना आसान हो जाता है।
5. ध्यान आज्ञाचक्र, हृदय, नाभि या मूलाधार पर आसानी से स्थिर बना रहता है ।
6. तीसरे चरण में कुम्भक का प्रयोग करना आसान हो जाता है।
7. ध्यान में लगभग आधा घं० एक ही आसन में बैठने का अभ्यास हो जाता है ।

ध्यान विधि - तीसरा चरण

1. इसमें संकल्प विधि पहले दो चरणों से भिन्न है । प्रत्येक संकल्प लेने से पहले ओ३म् के उच्चारण के साथ पूर्ण श्वास बाहर

निकलने पर बाहरी कुम्भक का प्रयोग किया जाता है । बाहरी कुम्भक की स्थिति में ही संकल्प किया जाता है ।

2. इसमें उपांशु व मानसिक विधि द्वारा मन्त्रों का जप किया जाता है अर्थात् पहली बार मन्त्र या शब्द का उच्चारण बिना ध्वनि के (केवल होठ हिलाकर) दीर्घ स्वर में करते हैं । यदि उपांशु विधि से असुविधा हो तो वाचिक विधि से करते रहते हैं ।

3. मन्त्र या शब्द का उच्चारण दीर्घ श्वास लेकर शुरू किया जाता है । **उच्चारण करने के बाद यथाशक्ति बाहरी कुम्भक लगाते हैं ।**

4. **बाहरी कुम्भक की स्थिति में** मन्त्र या शब्द के अर्थ का मानसिक उच्चारण करते हैं । या इसका चिन्तन, मनन स्वयं ही होता रहता है ।

5. **बाहरी कुम्भक की स्थिति में जितना अधिक समय तक रहने का अभ्यास और प्रभु चिन्तन किया जाता है, उतना ही ध्यान में मन अधिक लगता है और सफलता मिलती है ।**

6. मन्त्रों के उपांशु जप के बाद बाहरी कुम्भक और स्तम्भवृत्ति प्राणायाम के द्वारा ध्यान में प्रवेश किया जाता है । यहीं से वास्तविक ध्यान शुरू होता है ।

तीसरे चरण की प्रक्रिया विस्तृत रूप से निम्न प्रकार है ।

1. पहले चरण में दिये गये निर्देश के अनुसार ध्यान की तैयारी करें।
2. सर्वप्रथम तीन बार दीर्घ श्वसन प्रक्रिया करें ।
3. गायत्री मन्त्र के उच्चारण के साथ ध्यान विधि शुरू करें
4. पांचों संकल्प निम्न प्रकार करें–

4. (क) दीर्घ श्वसन क्रिया के साथ ओ३म् का उच्चारण करें अर्थात् पहले धीमा लम्बा गहरा श्वास अन्दर लें फिर धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए ओ३म् का उच्चारण करें । जब तक पूरा श्वास बाहर नहीं चला जाता, ओ३म् का उच्चारण चलता रहे ।

(ख) तत्पश्चात् बाहरी कुम्भक की स्थिति बनाये रखें । यदि असुविधा हो तो 1-2 सूक्ष्म श्वास ले सकते हैं ।

(ग) तत्पश्चात् संकल्प लें (कुम्भक स्थिति में)-

संकल्प (i)

हे परमेश्वर ! आप मुझे देख रहे हैं । सुन रहे हैं । जान रहे हैं । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ । उपासना काल में अपना मन आपसे हटाकर इधर–उधर नहीं ले जाऊंगा । आपकी उपासना प्रतिदिन सुबह–शाम हृदय से करूँगा ।

(घ) तत्पश्चात् 2 या 3 बार सूक्ष्म श्वास लें ।

पुनः बिन्दु (क) और (ख) में ऊपर दिये गये निर्देश के अनुसार ओ३म् का उच्चारण करें व बाहरी कुम्भक की स्थिति बनाये रखें । तत्पश्चात् कुम्भक की स्थिति में संकल्प (ii) बोलें–

संकल्प (ii)

हे प्रभु ! मैं एक आत्मा हूँ । अपने कर्मों के फलानुसार और आपकी कृपा से मुझे यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है । मैं संकल्प लेता हूँ मन, वचन व कर्म से कभी भी किसी भी प्राणी को हानि नहीं पहुँचाऊंगा । काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, अहंकार पर संयम रखूंगा ।

तत्पश्चात् 2 या 3 बार सूक्ष्म श्वास लें ।

इसी प्रकार ओ३म् का उच्चारण करने के बाद और कुम्भक स्थिति में नीचे दिये तीन संकल्प और लें ।

संकल्प नं० (iii)

हे प्रभु ! मैं अपने जीवन में सदैव यम नियम का पालन करूँगा । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के साथ–साथ शुद्धि, सन्तोष, स्वाध्याय, तप, व ईश्वर प्रणिधान को अपने जीवन का अंग बनाऊंगा । अपने सभी कार्य धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करूंगा ।

संकल्प नं० (iv)

हे प्रभु ! मैं व्रत धारण करता हूँ । अपनी शक्ति व योग्यता के अनुसार निरन्तर पंच महायज्ञ का पालन करूंगा । अविद्या को दूर करूँगा । विद्या की वृद्धि करूँगा । गरीब, कमजोर, रोगी व दुखियों की यथाशक्ति सहायता करूंगा ।

संकल्प (v)

हे प्रभु ! मुझे प्रेरणा दीजिए ! मैं न्यायकारी बनूं, सत्यमयी बनूं। दयालु बनूं, पवित्र बनूं, अहिंसक बनूं, निष्काम कर्म करूं । कभी भी किसी के मानव अधिकारों का उल्लंघन न करूं । जन्म जन्मान्तर के चक्र से मुक्ति पाऊँ । आपका सच्चा पुत्र कहलाने का अधिकारी बनूँ ।

नोट : संकल्प में बहुत बड़ी प्रेरणा व शक्ति होती है । प्रतिदिन प्रातः और सायं संकल्प दोहराने और उसके अनुसार अपना आचरण करने से हमारे ऊपर प्रभु की कृपा होती है, सभी शुभ कार्य सफल होते हैं। प्रभु भक्ति में मन लगता है । इसके विपरीत जो प्रभु भक्त उपरोक्त पांच संकल्पों के अनुसार अपनी जीवनचर्या ठीक नहीं करते, उनको ध्यान में कब व कितनी सफलता मिलेगी, इसका निर्णय वे स्वयं कर सकते हैं ।

5. **प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुभव कराने वाले शब्दों का निम्न प्रकार उपांशु व मानसिक उच्चारण करें ।**

(क) लम्बा, गहरा श्वास धीरे–2 अन्दर लें (पूरक करें) फिर श्वास को धीरे–2 बाहर छोड़ते हुए लम्बे स्वर में (उपांशु विधि द्वारा) उच्चारण करें ।

ओ-----------३-----------म् (रेचक स्थिति में)

सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वराय नमो नमः (बाहरी कुम्भक स्थिति में)

(ख) **बाहरी कुम्भक की स्थिति में मन्त्र का जितनी बार हो सके मानसिक उच्चारण करें । संभव हो तो ईश्वर के नाम के अर्थ (पेज 75-76 के अनुसार) मानसिक उच्चारण या चिंतन करें ।**

(ग) इसके पश्चात् तीन सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी एक दिये गये / बताये गये स्थान पर बनाये रखें ।

इस प्रकार यह ईश्वर के एक गुण का उपांशु व मानसिक विधि

से (बाहरी कुम्भक स्थिति द्वारा) उच्चारण हुआ ।

उपरोक्त विधि से ईश्वर के अन्य 19 गुणों का चिन्तन, मनन, अभ्यास उपाँशु व मानसिक विधि द्वारा (बाहरी कुम्भक का प्रयोग करते हुए) करें ।

(6) **प्राणायाम मन्त्र का (उपांशु) उच्चारण / चिन्तन**

(क) धीरे–2 लम्बा गहरा श्वास अन्दर लें । (पूरक)

(ख) धीरे–2 श्वास छोड़ते हुए मन्त्र के पहले चरण का (उपांशु विधि से) उच्चारण करें

(i) **ओ------------३------------म्---भूः**

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(i) **पूर्ण श्वास बाहर निकलने पर बाह्य कुम्भक करें।**

(ii) **कुम्भक की स्थिति में ओ३म भूः मन्त्र के अर्थ का मानसिक उच्चारण करें ।**

(iii) इसके पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी भी एक स्थान (शरीर के अन्दर) पर बनाये रखें ।

(ङ) इस प्रकार प्राणायाम मन्त्र के पहले चरण का उपांशु व मानसिक विधि द्वारा उच्चारण **अर्थ सहित** पूर्ण हुआ ।

इसी प्रकार उपरोक्त विधि से प्राणायाम मन्त्र के अन्य छः चरणों का उपांशु व मानसिक जाप अर्थ के साथ करें ।

(ii) **ओ------------३------------म्---भुवः**
ओ------------३------------म्---स्वः
ओ------------३------------म्---महः
ओ------------३------------म्---जनः
ओ------------३------------म्---तपः
ओ------------३------------म्---सत्यम्ः

इसके पश्चात् उपरोक्त पूर्ण मन्त्र का दीर्घ श्वास लेकर एक साथ उच्चारण करें (उपांशु विधि द्वारा)

(7) **असतो मा सदगमय मन्त्र का (उपांशु व मानसिक) उच्चारण**

(क) धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे–2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का (उपांशु उच्चारण करें।

(i) **ओ-------३-------म्--असतो मा सदगमय ।**

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(i) **पूर्ण श्वास बाहर निकलने पर बाह्य कुम्भक करें।**

(ii) **कुम्भक की स्थिति में पुनः उपरोक्त मन्त्र के अर्थ का मानसिक उच्चारण करें ।**

(iii) इसके पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) शरीर के अन्दर किसी भी एक स्थान पर मन की धारणा बनाये रखें।

(ङ) इस प्रकार इस मन्त्र के एक चरण का उपांशु व मानसिक उच्चारण अर्थ सहित पूर्ण हुआ ।

इसी प्रकार मन्त्र के अन्य दो चरणों का उच्चारण, जाप करें ।

(ii) **ओ------३------म्---तमसो मा ज्योतिर्गमय॥**

(iii) **ओ------३------म्---मृत्योर्मा अमृतंगमय ॥**

इसके बाद दीर्घ श्वास लेकर पूर्ण मन्त्र का एक साथ (उपांशु या मानसिक) उच्चारण करें ।

(8) **गायत्री मन्त्र के चारों चरणों का उच्चारण**

(क) धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे–2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का (उपांशु) उच्चारण करें।

ओ------------३------------म्--भूर्भुवः स्वः

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(i) पूर्ण श्वास बाहर निकलने पर कुम्भक करें ।

(ii) **कुम्भक की स्थिति में उपरोक्त मन्त्र का पुनः जितनी बार हो सके मानसिक उच्चारण करें ।**

(iii) इसके पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) शरीर के अन्दर मन की धारणा किसी एक स्थान पर बनाये रखें ।

(ङ) इस प्रकार इस मन्त्र के एक चरण का उच्चारण पूर्ण हुआ।

(i) इसी प्रकार उपरोक्त विधि के अनुसार शेष तीन चरणों का उच्चारण करें ।

(ii) (क) तत्पश्चात् पूर्ण गायत्री मन्त्र का दीर्घ श्वास लेकर (उपांशु विधि द्वारा) उच्चारण करें ।

(ख) फिर बाहरी कुम्भक की स्थिति में पुनः गायत्री मंत्र का मानसिक उच्चारण करें ।

(iii) इसके बाद आधा मिनट या 4–5 सामान्य श्वास लें ।

ईश्वर उपासना–ध्यान

(9) (क) (i) **इसके पश्चात् आसन को (यदि इच्छा हो) बदल लें और स्तम्भवृत्ति प्राणायाम करें। अर्थात् प्राणवायु/श्वास को यथाशक्ति जहाँ का तहाँ रोक दें ।**

(ii) इस अवस्था में निम्न मन्त्र का मानसिक उच्चारण बार–2 करते रहें ।

"आनन्दमयी परमेश्वर"

(iii) जब श्वास लेने की इच्छा हो तो सूक्ष्म श्वास लेकर फिर स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में आ जायें और उपरोक्त मन्त्र का मानसिक उच्चारण करते रहें ।

(iv) उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार 1 मिनट से 2 मिनट तक ध्यान का अभ्यास करें । इसमें यथाशक्ति अधिक समय भी लगाया जा सकता है ।

(ख) उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार नीचे लिखे दो और मन्त्रों का भी अभ्यास करें

''चैतन्यमयी परमेश्वर''

''सत्यमयी परमेश्वर''

(ग) इसके पश्चात् तीनों मन्त्रों का (स्तम्भवृति स्थिति में) एक

साथ मानसिक उच्चारण (जितनी बार संभव हो सके) करते रहें । श्वास लेने की इच्छा हो तो सूक्ष्म श्वास लेकर फिर स्तम्भवृति प्राणायाम की स्थिति में आते रहें । इस ध्यान क्रिया का समय धीरे–धीरे बढ़ाते रहें और ईश्वर अनुभूति का आनन्द पायें ।

''आनन्दमयी, चैतन्यमयी, सत्यमयी परमेश्वर''

ध्यान की समाप्ति / पूर्ण होने पर निम्नलिखित मन्त्रों का **सामान्य श्वास लेते हुए** (वाचिक या उपांशु विधि) द्वारा उच्चारण करें

(1) त्वमेव माता च पिता त्वमेव

(2) सर्वे भवन्तु सुखिनः

(3) हे ईश्वर दयानिधे

(4) ओ३म् नमः शम्भवाय च

(5) शान्ति पाठ

इसके पश्चात् प्रभु का धन्यवाद करें । यदि थकावट हो गई हो तो पांच मिनट शव आसन में लेट जायें ।

नोटः–सच्ची श्रद्धा तथा विश्वास सहित की गई उपासना से हृदय में शान्ति व आनन्द की लहर जाग्रित हो जाती है । हमारा हृदय कुछ ही क्षणों में ऐसा आनन्द का अनुभव करता है जो स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन से भी प्राप्त नहीं होता ।

सायंकाल के संकल्प :

सर्वप्रथम धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास लेकर ओ३म् का उच्चारण तीन बार करें । तत्पश्चात् बोलें–

हे प्रभु ! मैंने जो भी संकल्प प्रातः उपासना काल में किये थे उनको आज व्यवहार काल में पालन करने की कोशिश की है । प्रभु ! मुझे प्रेरणा दीजिए, मैं इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकूं ।

तीसरे चरण की समीक्षा

(1) तीसरे चरण में दी गई क्रियाओं का अभ्यास तीन महीने तक करने से उपांशु व मानसिक जप सिद्ध होने लगता है ।

(2) उपासना काल में मन व चित्त पूर्णतया शान्त व शिथिल होने लगता है ।

(3) आसन व प्राणायाम सिद्ध होने लगता है अर्थात् उपासना काल में शरीर का कोई भी अंग नहीं हिलता है । साधक का अपने शरीर और श्वास प्रश्वास पर पूर्ण अधिकार हो जाता है ।

(4) ध्यान में लगभग 45 मिनट तक एक ही आसन में बैठने का अभ्यास हो जाता है ।

(5) **ध्यान के चौथे चरण में प्रवेश के लिए पूर्ण तैयारी हो जाती है ।**

ध्यान विधि – चौथा चरण

1. ध्यान के चौथे चरण में बताये गये सभी मन्त्रों का मानसिक उच्चारण किया जाता है । शब्दों व मन्त्रों के उच्चारण में होठ नहीं हिलाये जाते हैं । ध्वनि की कोई भी आवाज नहीं होती है ।

2. मन्त्रों का मानसिक उच्चारण पहले की तरह दीर्घ श्वास लेकर किया जाता है।

3. मन्त्र का मानसिक उच्चारण व श्वास बाहर निकलने की प्रक्रिया पूर्ण होने के बाद बाहरी कुम्भक यथाशक्ति लगाते हैं और इस स्थिति में मन्त्र का पुनः मानसिक उच्चारण करते हैं या मन्त्र के अर्थ का चिन्तन करते हैं ।

4. मन्त्र या शब्द के अर्थ का वाचिक या उपांशु उच्चारण नहीं करते हैं । इसका चिन्तन, मनन स्वयं ही होता रहता है ।

5. पूर्ण शरीर स्थिर व शान्त हो जाता है । शरीर का कोई भी अंग नहीं हिलता है ।

6. ध्यान में लगभग 1 घंटे तक एक ही आसन में बैठने का अभ्यास हो जाता है ।

7. प्रत्येक मन्त्र के जप / उच्चारण के बाद बाहरी कुम्भक या स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में ध्यान (ईश्वर का चिन्तन–मनन) किया जाता है ।

8. यदि बैठे हुए आसन में असुविधा हो रही हो तो स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में आसन बदल लेते हैं अर्थात् पैरों की स्थिति बदल दी जाती है ताकि अधिक समय तक ध्यान में बैठा जा सके।

चौथे चरण की प्रक्रिया में संकल्प और जप आदि सभी मानसिक विधि से किया जाता है । उपांशु जप का प्रयोग नहीं किया जाता है । **शेष सभी क्रियायें व विधि तीसरे चरण के अनुसार ही हैं ।**

नोट : यदि मानसिक उच्चारण के द्वारा ध्यान / जप करने में असुविधा हो रही हो तो तीसरे चरण में दी गई प्रक्रिया का अभ्यास तीन महीने और करें ।

चौथे चरण की प्रक्रिया विस्त्रित रूप में निम्नलिखित है ।

1. पहले चरण में दिये गये निर्देश के अनुसार ध्यान की तैयारी करें।
2. प्रथम तीन बार दीर्घ श्वसन प्रश्वसन की प्रक्रिया करें ।
3. गहरा श्वास लेकर मानसिक विधि से गायत्री मन्त्र के उच्चारण के साथ ध्यान विधि शुरू करें ।
4. तीसरे चरण के निर्देशानुसार गहरा श्वास लेते हुए ओ३म् के मानसिक जप के साथ सभी संकल्प करें । अर्थात् ओ३म् का उच्चारण व संकल्प मन ही मन में बोलें ।
5. **प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुभव कराने वाले शब्दों का मानसिक उच्चारण ।**

(क) लम्बा, गहरा धीमा श्वास अन्दर लें (पूरक) फिर श्वास को धीरे–2 बाहर छोड़ते हुए लम्बे स्वर में तीसरे चरण के अनुसार मानसिक उच्चारण करें–
ओ---------------३---------------म्
सच्चिदानन्द स्वरूप परमेश्वराय नमो नमः

(ख) बाहरी कुम्भक की स्थिति में मन्त्र का जितनी बार हो सके मानसिक उच्चारण करें । संभव हो तो ईश्वर के नाम के अर्थ (पेज 75–76 के अनुसार) मानसिक उच्चारण या चिंतन करें ।

(ग) इसके बाद तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी एक दिये गये / बताये गये स्थान पर बनाये रखें

इस प्रकार यह ईश्वर के एक गुण का मानसिक उच्चारण/चिन्तन (कुम्भक स्थिति द्वारा) हुआ । इसी प्रकार अन्य 19 गुणों का चिन्तन मनन करें ।

6. **प्राणायाम मंत्र का मानसिक उच्चारण / चिन्तन**

(क) धीमा, गहरा, लम्बा श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए मन्त्र के पहले चरण का मानसिक उच्चारण करें ।

(i) **ओ------------३------------म्---भूः**

(ग) मन्त्र का मानसिक उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(i) पूर्ण श्वास बाहर निकलने पर बाह्य कुम्भक करें ।

(ii) कुम्भक की स्थिति में पुनः "ओ३म् भू" का मानसिक उच्चारण करें या इसके अर्थ का मानसिक चिन्तन करें।

(iii) इसके पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) मन की धारणा किसी भी एक स्थान (शरीर के अन्दर) पर बनाये रखें ।

(ङ) इस प्रकार प्राणायाम मंत्र के पहले चरण का मानसिक उच्चारण/चिन्तन **अर्थ सहित** पूर्ण हुआ ।

इसी प्रकार उपरोक्त विधि से प्राणायाम मन्त्र के अन्य छः चरणों का (अर्थ सहित) मानसिक जाप करें ।

(ii) **ओ------------३------------म्---भुवः**
ओ------------३------------म्---स्वः
ओ------------३------------म्---महः
ओ------------३------------म्---जनः
ओ------------३------------म्---तपः
ओ------------३------------म्---सत्यम्

इसके पश्चात् उपरोक्त पूर्ण मन्त्र का दीर्घ श्वास लेकर एक साथ मानसिक उच्चारण करें ।

(7) **असतो मा सदगमय का मानसिक उच्चारण/चिन्तन**

(क) धीमा, गहरा, लम्बा श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का मानसिक उच्चारण (जाप) करें ।

(i) **ओ---------३---------म्--असतो मा सदगमय**

(ग) मंत्र का मानसिक उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(i) पूर्ण श्वास बाहर निकलने पर बाह्य कुम्भक करें ।

(ii) कुम्भक की स्थिति में पुनः उपरोक्त मंत्र का मानसिक उच्चारण करें या **इसके अर्थ का मानसिक चिन्तन करें ।**

(iii) इसके पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) शरीर के अन्दर किसी भी एक स्थान पर मन की धारणा बनाये रखें ।

(ङ) इस प्रकार इस मन्त्र के एक चरण का मानसिक उच्चारण अर्थ सहित पूर्ण हुआ ।

इसी प्रकार मंत्र के अन्य दो चरणों का अर्थ सहित मानसिक उच्चारण / जाप / चिन्तन करें ।

(ii) **ओ-------३-------म् तमसो मा ज्योतिर्गमय ।**

(iii) **ओ-------३-------म् मृत्योमा अमृतंगमय ॥**

इसके बाद दीर्घ श्वास लेकर पूर्ण मन्त्र का मानसिक उच्चारण/चिन्तन करें ।

(8) **गायत्री मंत्र के चारों चरणों का मानसिक उच्चारण**

(क) धीमा, गहरा, लम्बा श्वास अन्दर लें (पूरक)

(ख) धीरे-2 श्वास छोड़ते हुए पहले चरण का मानसिक उच्चारण करें।

(i) **ओ-----------३-----------म् भूर्भवः स्वः**

(ग) मन्त्र का उच्चारण व श्वास का बाहर निकलना एक साथ पूर्ण होना चाहिए ।

(i) पूर्ण श्वास बाहर निकलने पर कुम्भक करें ।

(ii) **कुम्भक की स्थिति में पुनः उपरोक्त मंत्र का मानसिक उच्चारण करें ।**

(iii) इसके पश्चात् तीन सामान्य सूक्ष्म श्वास लें ।

(घ) शरीर के अन्दर किसी भी एक स्थान पर मन की धारणा बनाये रखें।

(ङ) इस प्रकार इस मन्त्र के एक चरण का मानसिक उच्चारण पूर्ण हुआ।

(i) इसी प्रकार उपरोक्त विधि के अनुसार शेष तीनों चरणों का मानसिक उच्चारण करें ।

(ii) तत्पश्चात् पूर्ण गायत्री मन्त्र का पहले दीर्घ श्वास लेकर मानसिक उच्चारण करें ।

(iii) इसके बाद आधा मिनट या 4–5 सामान्य श्वास लें।

ईश्वर उपासना–ध्यान

(9) (i) अब आसन को (यदि इच्छा हो) बदल लें और स्तम्भ-वृत्ति प्राणायाम की स्थिति में आ जायें। अर्थात् प्राणवायु/श्वास को यथा शक्ति जहाँ का तहाँ रोक दें ।

(ii) इस अवस्था में निम्न मन्त्र का मानसिक उच्चारण बार–2 करते रहें ।

"आनन्दमयी परमेश्वर"

(iii) जब श्वास लेने की इच्छा हो तो सूक्ष्म श्वास लेकर फिर स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में आ जायें और उपरोक्त मन्त्र का मानसिक उच्चारण करते रहें ।

(iv) उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार 1 मिनट से 2 मिनट तक ध्यान का अभ्यास करें । इसमें यथाशक्ति अधिक समय भी लगाया जा सकता है ।

(ख) उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार नीचे लिखे दो और मन्त्रों का भी अभ्यास करें

''चैतन्यमयी परमेश्वर''

''सत्यमयी परमेश्वर''

(ग) इसके पश्चात् तीनों मन्त्रों का **(स्तम्भवृति स्थिति में)** एक साथ मानसिक उच्चारण (जितनी बार संभव हो सके) करते रहें । श्वास लेने की इच्छा हो तो सूक्ष्म श्वास लेकर फिर स्तम्भवृति प्राणायाम की स्थिति में आते रहें । इस ध्यान क्रिया का समय धीरे-धीरे बढ़ाते रहें और ईश्वर अनुभूति का आनन्द पायें ।

''आनन्दमयी, चैतन्यमयी, सत्यमयी परमेश्वर''

ध्यान की समाप्ति / पूर्ण होने पर निम्नलिखित मन्त्रों का सामान्य श्वास लेते हुए (वाचिक या उपांशु विधि द्वारा) उच्चारण करें

(1) त्वमेव माता च पिता त्वमेव

(2) सर्वे भवन्तु सुखिनः

(3) हे ईश्वर दयानिधे

(4) ओ३म् नमः शम्भवाय च

(5) शान्ति पाठ

इसके पश्चात् प्रभु का धन्यवाद करें । यदि थकावट हो गई हो तो पांच मिनट शव आसन में लेट जायें ।

सायंकाल के संकल्प :

सर्वप्रथम धीमा, गहरा, लम्बा, श्वास लेकर ओ३म् का उच्चारण तीन बार करें । तत्पश्चात् बोलें–

हे प्रभु ! मैंने जो भी संकल्प प्रातः उपासना काल में किये थे उनको आज व्यवहार काल में पालन करने की कोशिश की है । प्रभु, मुझे प्रेरणा दीजिए ! मैं इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकूं ।

नोटः- जो साधक ध्यान विधि के चौथे चरण को मानसिक प्रक्रिया से करने में असमर्थ हैं या कुछ असुविधा अनुभव करते हों, वे गायत्री मन्त्र व संकल्प-विधि को उपांशु या वाचिक विधि से कर सकते हैं । इसी प्रकार ध्यान के पूर्ण होने पर पांच मन्त्रों (त्वमेव माता च पिता त्वमेव से लेकर शान्तिपाठ तक) का भी उपांशु या वाचिक उच्चारण कर सकते हैं ।

ध्यान विधि का सूक्ष्म में क्रम

साधकों व भक्तों की सुगमता के लिए पूर्ण ध्यान विधि का क्रम सूक्ष्म में पुनः नीचे दिया जा रहा है ।

1. तीन गहरी, लम्बी श्वास क्रियायें करें ।

2. गायत्री मन्त्र का वाचिक / मानसिक उच्चारण करें ।

3. पांच संकल्प वाचिक / मानसिक उच्चारण की विधि से करें अर्थात् बाहरी कुम्भक की स्थिति में संकल्प बोलें ।

4. प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव का अनुभव कराने वाले शब्द, मन्त्रों का वाचिक / मानसिक उच्चारण श्वास प्रश्वास के साथ करें और अर्थ का भी चिन्तन करें ।

5. प्राणायाम मन्त्र के सातों चरणों का वाचिक / मानसिक उच्चारण करें । यथा शक्ति बाहरी कुम्भक लगायें व पुनः इस स्थिति में प्रत्येक चरण का मानसिक उच्चारण करें या अर्थ का चिन्तन करें ।

6. असतो मा सदगमय मन्त्र के तीनों चरणों का उच्चारण वाचिक/ मानसिक रूप में करें । कुम्भक की स्थिति बनाकर पुनः मानसिक उच्चारण करें या अर्थ का चिन्तन करें ।

7. गायत्री मन्त्र के चार चरणों का उच्चारण वाचिक / मानसिक विधि से करें ।

8. स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में दिये गये तीन मन्त्रों से ध्यान करें।

ध्यान की समाप्ति/पूर्ण होने पर निम्न मन्त्रों का वाचिक, उपांशु या मानसिक उच्चारण करें ।

(क) त्वमेव माता च पिता त्वमेव

(ख) सर्वे भवन्तु सुखिनः

(ग) हे ईश्वर दयानिधे

(घ) ओ३म् नमः शम्भवाय च

(ङ) शान्ति पाठ

(च) ईश्वर धन्यवाद व शव आसन में लेटना ।

ध्यान की सूक्ष्म विधि

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि ध्यान में बैठकर प्रभु की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करना जीवन का सर्व श्रेष्ठ कार्य है । यह कार्य शान्ति के साथ व पूर्ण समय लगा कर प्रतिदिन प्रातः व सायं करना चाहिए । परन्तु कभी-2 परिस्थितियों को देखते हुए साधक / भक्त के पास ध्यान में बैठने के लिए या तो पर्याप्त समय (कम से कम आधा घण्टा) नहीं होता या किसी बिमारी के कारण वह आसन में नहीं बैठ सकता । ऐसी परिस्थिति में या यात्रा में साधक नीचे दी गई सूक्ष्म विधि से ध्यान कर सकते हैं ।

भोजन करने के बाद भी केवल सूक्ष्म विधि का ही प्रयोग करें ।

सूक्ष्म विधि का क्रम (मानसिक उच्चारण द्वारा)

1. तीन गहरी लम्बी श्वास क्रियायें करें ।
2. गायत्री मंत्र का मानसिक उच्चारण करें ।
3. बताये गये संकल्प करें ।
4. प्रभु के गुण, कर्म, स्वभाव बाले कुछ मन्त्रों का मानसिक उच्चारण समय की उपलब्धता व स्थिति के अनुसार करें ।
5. एक बार प्राणायाम मन्त्र का मानसिक उच्चारण करें ।
6. एक बार असतो मा सद्गमय मन्त्र का मानसिक उच्चारण करें।
7. फिर एक बार गायत्री मन्त्र का मानसिक उच्चारण करें ।
8. "स्तम्भवृत्ति प्राणायाम की स्थिति में बैठकर, आनन्दमयी/ चैतन्यमयी / सत्यमयी परमेश्वर" में से किसी एक का या तीनों का मानसिक उच्चारण के साथ समय की उपलब्धता के अनुसार ध्यान करें ।

9. मानसिक उच्चारण से शान्ति पाठ करें ।

10. (a) **किसी भी मन्त्र के मानसिक या वाचिक उच्चारण में दीर्घ श्वसन विधि का प्रयोग न करें ।**

    (b) **यदि खाली पेट हैं या खाना खाये 3 घं. हो गये हैं तो प्रत्येक मन्त्र के उच्चारण–मानसिक या वाचिक– के बाद बाहरी कुम्भक स्थिति करके पुनः मन्त्र का मानसिक उच्चारण करें अन्यथा कुम्भक का प्रयोग न करें ।**

उपसंहार

जिस प्रकार हम प्रतिदिन श्वास लेते हैं । श्वास प्रश्वास की क्रिया बन्द नहीं कर सकते, इसी प्रकार हमें ध्यान, व्यायाम व स्वाध्याय प्रतिदिन करना चाहिए । इसको छोड़ना उचित नहीं है ।

इस पुस्तक में दी गई ध्यान विधि व उससे जुड़ी अनेक क्रियायें – श्वसन, प्राणायाम आदि ईश्वर आनन्द के साथ–2 स्वास्थ्य व शान्ति प्राप्त करने के लिए हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष व अहंकार धीरे–2 संयम में आते जाते हैं और हम सुख, शान्ति और आनन्द की ओर बढ़ते जाते हैं ।

पुस्तक में मैंने जो कुछ भी लिखा है वह वेद व आर्ष ग्रन्थों के स्वयं के अध्ययन पर आधारित होने के साथ–साथ अपने व्यक्तिगत अनुभव के अनुसार है ।

जो साधक व भक्तगण ध्यान के विषय में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं या अपने संशय दूर करना चाहते हैं वे लेखक से दूरभाष (मो० 09873029000) पर सायं 8 बजे से 9 बजे तक सम्पर्क कर सकते हैं । इसके अतिरिक्त निःशुल्क **ध्यान प्रशिक्षण शिविर** में भी लेखक को आमन्त्रित कर सकते हैं ।

मैं उस परमपिता परमेश्वर का उपकार मानता हूँ, उसे हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिसकी प्रेरणा से यह पुस्तक सामान्य भक्तों व मनुष्यों के लिए लिखी गई है । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह सभी भक्तों पर असीम कृपा करें ताकि सभी को ध्यान में पूर्ण सफलता मिले ।

❑ ❑ ❑